हमारी समस्याएं

वीर सावरकर

राजपाल एन्ड सन्ज़
नई सड़क : : दिल्ली

प्रथमावृत्ति] [१-८-०

प्रकाशक—
राजपाल एण्ड सन्ज़
नई सड़क, दिल्ली

मुद्रक—
रामा कृष्णा प्रेस
कटरा नील, दिल्ली

लेख सूची

प्रकाशकीय

आज भारत स्वतन्त्र है। स्वतन्त्रता के साथ ही देश के सम्मुख कई बड़े महत्वपूर्ण प्रश्न व समस्याएं उपस्थित हो गई हैं जिन पर हमें गम्भीर विचार करके अन्तिम निश्चय करने हैं। यदि इन आधारभूत प्रश्नों पर विचार करते समय हमने कोई भूल कर दी और समय की कसौटी पर ये पूरे न उतरे, तो राष्ट्र शनैः-शनैः अवनत होता जायगा। परन्तु यदि इन मूलतः महत्वपूर्ण समस्याओं का विचार करते हुए हमने भारतीय संस्कृति और देश के हितों को सम्मुख रखा तो राष्ट्र का भवन दृढ़ नींव पर खड़ा होगा और भारत का भाल उत्तरोत्तर उज्ज्वल होगा।

'हमारी समस्याएं'—में श्री सावरकरजी ने देश की वर्तमान प्रमुख समस्याओं की विचारपूर्ण विवेचना की है जो उनके वर्षों के सतत विचार और मनन का परिणाम है। देश-हितैषी सभी विचारशील व्यक्तियों को सावरकर जी के विचारों से एक नया प्रकाश मिलेगा और स्फूर्ति भी।

—राजपाल एण्ड सन्ज़

हमारा हिन्दू राष्ट्र

अपने हिन्दूधर्म तथा हिन्दूसमाज को कालचक्र के कारण जो रूढियाँ हानिकारक हो रही हैं उन को दूर करके वर्तमान परिस्थिति में अपने हिन्दूराष्ट्र का संगठन, बल एवं प्रगति जिनके द्वारा साध्य हो सके ऐसे कुछ सुधार करने के लिए जब से हमने जातिभेदोच्छेदक आन्दोलन प्रारम्भ किया तब से हमें चारों ओर से, व्यक्तिशः और सामूहिक रूप से, अनेकों बार पूछा जा रहा है कि आप हिन्दूधर्म, हिन्दूराष्ट्र, हिन्दुत्व आदि जिन शब्दों का उपयोग करते हैं उनका अर्थ क्या है ? एक पक्ष के लोग जो स्वयं धर्म प्रभृति परंपरागत देव-विषयक कल्पनाओं के बन्धन न मानने वाले और अर्वाचीन बुद्धिवाद का ही केवल अवलंबन करनेवाले होने के कारण पूछते हैं, "वेद, यज्ञ, मूर्ति, गाय, परलोक प्रभृति विषयक धार्मिक कल्पनाओं को तो हम मानते हैं नहीं, फिर हम अपने को हिन्दू क्यों कर कहें ? हिन्दूराष्ट्र जिसे आप मानते हैं उसके लक्षण क्या हैं ? आप भी बुद्धिवाद की कसौटी पर समस्त धार्मिक कल्पनाओं को परख लेने के पक्ष के दिखाई देते हैं; फिर अपने आपको हिन्दू क्यों कहलाते हैं ? हिन्दू संगठन, शुद्धि आदि धार्मिक उलझनों में आप क्यों पड़ते हैं ? हम हिन्दू एक राष्ट्र हैं क्या ? ऐसे भी कोई समान लक्षण अथवा बन्धन हैं क्या, जिन के कारण यह माना जा सके कि हम लोग एक जीवी राष्ट्र हैं ?"

हमारे इन प्रश्नकर्ताओं में से कुछ को तो वे स्वयं हिन्दू हैं या क्या हैं—यह शंका उत्पन्न हो गई है ।

"मुझे अपने को हिन्दू क्यों कहना चाहिए ?" यह प्रश्न पूछने वालों में से कुछ तो हिन्दूराष्ट्र के सैन्य-शिविर के चारों ओर भटकने

वाले बाज़ारू लोग हैं; इस हिन्दूराष्ट्र के प्राण-संकट के समय जूझते हुए प्राणार्पण करने वाले नहीं, अपितु संकट आते ही परिवर्त कर भाग जानेवाले पलायन-वीर ही हैं। हमें हिन्दू रह कर विधान परिषद् में अधिक स्थान प्राप्त हो सकेंगे अथवा अहिन्दू हो कर, इसी जोड़-बाक़ी पर उनका हिन्दू रहना या न रहना निर्भर करता है। उन्होंने अगर पूछा कि "मुझे हिन्दू क्यों रहना चाहिए," तो उसका सीधा-सरल उत्तर है—"तुम्हारा हिन्दू न रहना ही आज अच्छा है, क्योंकि तुम हिन्दुत्व की व्याख्या द्रव्य प्राप्ति का केवल एक साधन मात्र इस दृष्टि से करते हो, जाओ और यथाशक्य शीघ्र अहिन्दू हो जाओ। कारण, आज नौकरी और पेट के लिए चार दाने अहिन्दुओं को ही अधिक मिल रहे हैं। जब कभी हम हिन्दुओं का दिन आयेगा तब ऐ पेट के दास! "मुझे हिन्दू क्यों न रहना चाहिए," ऐसा पूछते हुए तुम इस हिन्दूध्वज के नीचे अवश्य वापिस आओगे।"

इस प्रकार राष्ट्र, धर्म अथवा समाज ही नहीं, अपितु अपने माता-पिता का सम्मान और ममत्व भी जो बाज़ार-भाव से तौल कर बेचना चाहते हैं, ऐसे लोगों के सम्बन्ध में क्या मानवता की भाषा का प्रयोग किया जाये? आज वे दूसरे लोगों की वंचना कर रहे हैं किन्तु कल वे स्वयं ही निश्चित रूप से मुंह की खायेंगे।

"मैं अपने को हिन्दू क्यों कहूँ," पूछने वाले लोगों में से उपर्युक्त बाज़ारू पेट बाबू निकाल कर जो शेष रह जाते हैं उनके आक्षेप प्रामाणिक होते हैं। वे अपने बुद्धिप्रमाणवादी मन से मेल खाने वाली हिन्दुत्व की व्याख्या समझते ही नहीं हैं। उसके सम्बन्ध में उनका ज्ञान अधूरा है जो अज्ञान से भी अधिक घातक और त्याज्य रहा है। उन प्रामाणिक आक्षेपकर्ताओं के समाधान के लिए तथा अपने सनातनी बन्धुओं को जो भय प्रतीत होता है कि यदि बुद्धिवाद के

पीछे लग कर हम अपने धार्मिक आचारों एवं संस्कारों को एक एक करके छोड़ते जायेंगे तो कितना हिन्दुत्व शेष रह जायेगा—उसके निवारण के लिए, तथा हिन्दुत्व के वास्तविक घटक कौन हैं, हिन्दुत्व की कौन सी व्याख्या हमें सत्य और हितकर मालूम देती है, हिंदूराष्ट्र का पाया अन्य किसी भी राष्ट्र की नींव की अपेक्षा अधिक वज्रदृढ़ भूमिका पर कैसा आधारित है और आज भी बुद्धिवाद की भट्ठी में से निकालने के पश्चात् वह किस प्रकार कसौटी पर बावन रत्ती सुवर्ण ठहरता है आदि बातों का संक्षिप्त दिग्दर्शन हम इस लेख के द्वारा करने जा रहे हैं।

एक बात निश्चित है कि किसी पगड़ी विशेष में, ब्रह्मसूत्र में, चोटी में या गोमूत्र में हिन्दुत्व नहीं है। हिन्दुत्व कोई ताड़पत्र पर लिखी हुई पोथी नहीं है जो ताड़पत्र के चटकते ही चूर-चूर हो जाये, और न आज उत्पन्न हो कर कल नष्ट होने वाली कागज़ पर लिखी हुई घटना ही हिन्दुत्व है। हिन्दुत्व गोलमेज़ परिषद् का कोई प्रस्ताव नहीं है। हिन्दुत्व एक महान् जाति का जीवन है। वह सहस्रावधि पुण्यात्माओं के, महात्माओं के, हुतात्माओं के युगानुयुग के अथक परिश्रम एवं प्रयत्नों का परिपाक है। आज वह उतार पर है किन्तु फिर भी समुद्र ही है। सुप्त होने पर भी ज्वालामुखी है। बेसुधी के चक्कर में, वायु के झटके से, उस विराट् राष्ट्रपुरुष के द्वारा प्रमाद के कार्य भी हो रहे हैं, किन्तु यह बेसुध स्थिति ऊर्ध्व की है, मृत्यु की नहीं। इस हिन्दूराष्ट्र और हिन्दूधर्म के उत्कर्ष के लिए हवन होने को आज भी जिन शतावधि हुतात्माओं के शरीर का बिंदु बिंदु मचल रहा है उन हुतात्माओं की वह जलन और आत्मयज्ञ ही इस हिन्दूराष्ट्र के अक्षुण्ण जीवन का साक्षी है, इसके पुनरुत्थान एवं पुनरुज्जीवन का हामी है।

'वास्तव में हिंदूराष्ट्र ऐसी कोई वस्तु है क्या', ऐसा साफ़-साफ़ पूछने वाले हिन्दुत्व के पारलौकिक अथवा धार्मिक बंधनों के विषय में जिन्हें जिज्ञासा नहीं है किंतु उसके भौतिक और राष्ट्रीय स्वरूप के विषय में जिनको प्रश्न पूछना है ऐसे अपने स्वकीयों में से ही प्रामाणिक बुद्धिवादियों को और परकीयों में से अप्रामाणिक बुद्धिभेदियों को बुद्धिवाद की भाषा में हम पूछते हैं कि इंगलैंड, जर्मनी, इटली, अमेरिका, जापान, आयर्लैंड आदि देशों के बारे में क्या आप बतायेंगे कि इन सभी देशों के क्या विशेष घटक हैं जिनके कारण उन्हें "राष्ट्र" का पद प्राप्त हो सका है ? यदि वे घटक हिन्दूराष्ट्र की बनावट में भी उसी उत्कटता से स्थित हों तो हिन्दूराष्ट्र का अस्तित्व भी आपको स्वीकार करना पड़ेगा, अन्यथा सारे संसार में राष्ट्र नाम की कोई वस्तु ही नहीं है, यह कह कर अलग हो जाना पड़ेगा। उस कथन में कुछ तथ्य भी है। अखिल मनुष्य-जाति ही केवल एक राष्ट्र, पृथ्वी ही एक देश और मानवता यही एक धर्म—यह भी एक ध्येय है; उससे हमारा विवाद नहीं। जब कभी उस ध्येय को आप सभी लोग प्रत्यक्ष व्यवहार में लायेंगे तब और उस समय आपको प्रतीत हो जायेगा कि उस ध्येय के नागरिकत्व की प्रतिज्ञा पर प्रथम हस्ताक्षर यदि किसी का होगा तो इस हिंदू जाति का ही, इस हिंदू राष्ट्र का ही। "हमारा स्वदेश, भुवन त्रय में वास" ऐसा कहने वाले तुकाराम और "वाराणसी मेदिनी" को ही समझाने वाले अद्वैताचार्य शंकर हिन्दू ही थे। किंतु जब तक संसार की प्रत्येक छोटी-मोटी जाति स्वतन्त्र राष्ट्रित्व के गुट बना कर दूसरों से अलग हो उन्हें लूटते ही रहना चाहती है तब तक यह हिंदूराष्ट्र भी अपना स्वतन्त्र अस्तित्व बनाये रखना चाहता है। जब तक गांव में चोर हैं तब तक साहूकारों को भी अपने घरों में पक्की दीवालें बनानी और दर्वाजों में पक्के ताले लगाने

ही होंगे। संसार के राष्ट्रियत्व का समर्थन जब तक आप कर रहे हैं और उसका अस्तित्व अपरिहार्य अथवा इष्ट मान रहे हैं तब तक अंग्रेज़ी, अमेरिकन, तुर्की आदि राष्ट्रों के समान हम हिंदुओं की राष्ट्रीय आकाँक्षाओं का और हिंदूराष्ट्र के अस्तित्व का समर्थन भी उसी न्याय से होता है। यदि इंगलैंड, जर्मनी, फ्रांस, रशिया, जापान, और तो और हंगरी, स्विटजरलैंड और अफगानिस्तान जैसे छोटे-छोटे भूप्रदेश भी एक-एक राष्ट्र हैं तो आसिंधु-सिंधु-विस्तृत हिंदुस्थान जिसकी पितृभूमि और पुण्यभूमि है, वह हिंदू जाति भी अवश्यमेव एक महनीय राष्ट्र है, क्योंकि वह राष्ट्रियत्व के सम्पूर्ण घटकों से सम्पन्न और लक्षणों से समन्वित है।

अंग्रेज, फ्रेंच, जापानी, अमेरिकन आदि लोकपदों को राष्ट्र की पदवी निर्विवाद रूप से धारण करने का अधिकार कैसे प्राप्त हुआ? आपकी इस विषय में क्या सम्मति है? राष्ट्रियत्व का अनन्य भले ही न हो फिर भी अग्रगण्य घटक ही स्थान है न? इंगलिश लोगों का इंग्लैंड, फ्रेंच लोगों का फ्रांस, जर्मनों का जर्मनी, जापानियों का जापान, चीनियों का चीन, रशियनों का रशिया। जिन जनपदों की समग्र और बहुसंख्यक बस्ती जिस भूमि में परंपरागत रहती चली आई हो ऐसी एक विशिष्ट पितृभूमि, स्वदेश 'स्थान' उनके पास है और यदि यह कारण उन्हें राष्ट्र कहलाने योग्य पात्रता प्रदान करा सकता है तो

स्थानः—राष्ट्रियत्व का अग्रगण्य घटक जो 'स्थान' है वह यहाँ देखिये! हमारी हिंदू जाति का स्थान वही हिंदुस्थान, यह हमारा स्वदेश! यह हमारी आसिंधु सिंधुपर्यंता पितृभूमि! जब इङ्गलैंड में आँग्लों का प्रवेश नहीं हुआ था, जब गॉल में उतर कर फ्रांस्को

की टोलियों ने उसको फ्रांस नहीं बनाया था; और तो और, जब राम्युलस और रोम भी उत्पन्न नहीं हुआ था, जब मध्य एशिया में तुर्क थे भी या नहीं यह कहना कठिन है, तब फिर अमेरिका, सर्बिआ, स्पेन, स्विस प्रभृति देशों के विषय में तो बोलना ही क्या—उस समय से पूर्णतया निर्विवाद रूप से इस भूमि में हम 'सप्त सिंधुओं' (हिंदुओं) की बस्ती अखण्ड परंपरा से रहती हुई चली आई है। वेदों में ही हमारे राष्ट्र का मूल नाम 'सप्त सिंधवः' और इस देश को सिंधु देश के नाम से कहा गया है। हमारे हिंदूराष्ट्र के कोलेरियन, द्रवीड़ियन आदि कुल के हमारे बांधव तो उससे भी पहले से इसी भूमि में निवास करते आये हैं। यदि पुराणों की काल गणना को छोड़ भी दिया जाए और केवल आज उपलब्ध इतिहास के अंकगणित की भाषा में ही सोचा जाय तो भी चन्द्रगुप्त और पुरु के पंजाब से जिस सिंधु स्थान पर, भारतवर्ष पर हम हिन्दुओं का परंपरागत निवास चलता आया है वह यह विस्तीर्ण देश, हम हिंदुओं का स्वदेश, पितृभूमि हमें कहते आना ही चाहिए, यह 'हिन्दुस्थान' हिंदुस्थान ही रहना चाहिए।

राष्ट्रियत्व का अग्रगण्य घटक 'स्थान' है। उसकी अपनी हिन्दू जाति के लिए कमी नहीं है। इतना ही नहीं, इस स्थान सम्पदा के विषय में संसार के आज के राष्ट्र हमारे सम्मुख खड़े भी रहें तो भिखारी के रूप में ही खड़े रह सकेंगे! हमारी इस भरतभूमि की पहाड़ियों के समान भी उनके देशों के पर्वत ऊंचे नहीं हैं; हमारी उपनदियों के समान भी उनकी महानदियाँ प्रवाहिणी नहीं हैं; हमारे वनों के से उनके उद्यान भी सुगन्धित एवं सुमधुर फलोंफूलों से भरे हुए नहीं हैं; हमारे यहाँ के अकालों के बराबर भी उनके यहाँ सु-काल में समृद्धि नहीं है। यह व्यर्थ की बकवास नहीं है, सत्य है। हिमालय, विन्ध्य और सह्याद्रि जिसके कुलपर्वत; गंगा, यमुना, नर्मदा, गोदावरी, कृष्णा,

कावेरी, सिन्धु, शतद्रु जिसकी नदियाँ; बड़े बड़े बन्दरगाहों से महानदियों के सुहाने से, विस्तीर्ण पुलिनों से सुसज्जित शत शत योजनों का सिंधु तट; संसार के वाणिज्य एवं सम्पदा की लेन-देन करने के लिए तत्पर और दुर्ग के लिए अलंघ्य खंदकों की भाँति हमारी पितृ भू का तीनों दिशाओं से संरक्षण करने के लिए उपयुक्त ऐसे उपसागर, सागर और महासागर ! नैसर्गिक, भौगोलिक, खनिज एवं वानस्पत्य में जो ऐसे अतुलनीय श्री की स्वामिनि है, वह यह हमारी पितृ-भू देखिए ! हमारी हिन्दू जाति का यह अधिष्ठान अंग्रेज़ी, जापानी, जर्मनी, फ्रांस, इटली इत्यादि बलिष्ठ राष्ट्रों के अधिष्ठान से, और तो और, अमेरिका और चीन को छोड़ कर संसार के किसी भी राष्ट्र के अधिष्ठान से, कुल लाभालाभ तथा न्यूनाधिक्य का विचार करते हुए सर्वतोपरि श्रेष्ठ हैं और चीन-अमेरिका से भी लवमात्र-भी कनिष्ठ नहीं हैं।

भाषा और लिपि:—एक भाषा और एक लिपि राष्ट्रियत्व का दूसरा लक्षण समझा जाता है। इस लक्षण की कमी भी हम हिन्दुओं को पड़ने का कोई कारण नहीं है। हम सारे ही हिन्दुओं की समान धर्मभाषा संस्कृत और समान धर्मलिपि देवनागरी अनेक शतकों से बद्धमूल हो चुकी है। वैदिक सनातनियों के कोटि-कोटि लोगों की तो वह प्रत्यक्ष देववाणी ही है। हमारे जैन, बौद्ध, आर्य प्रभृति पन्थों का प्रचण्ड वाङ्मय उसमें ही गुंथा हुआ है। सिक्खों के प्रख्यात दशम गुरु श्री गोविंद सिंह जी ने अपने शिष्यों को जान बूझ कर काशी भेज कर संस्कृत सिखवायी और संस्कृतज्ञ पण्डितों का निर्मल सिक्ख नामक एक विद्वान् वर्ग निर्माण किया। उन गुरु गोविन्द सिंह जी का अपना सारा दशम ग्रन्थ नागरी लिपि और हिन्दी भाषा में ही लिखित है। काश्मीर से लेकर महाराष्ट्र तक कोट्यवधि हिन्दूओं की अनेक भाषायें संस्कृतोद्भव सगी बहनें हैं और द्राविड़ीय भाषायें संस्कृतनिष्ठ,

इस देववाणी के स्तन्य पर ही परिपुष्टित हैं। किन्तु यह सब होते हुए भी हम हिन्दुओं की धार्मिक समान भाषा कोई तो भी सीधी-साधी ग्रामीण भाषा नहीं है। लेटिन भी शब्द-सम्पत्ति में, वाङ्मय सम्पत्ति में, नव शब्द निर्मिति में जिसके पासङ्ग में भी नहीं ठहर सकती ऐसी साहित्य-शास्त्र-शब्द-साम्राज्ञी संस्कृत ! यह संस्कृत भाषा हम हिन्दुओं की राष्ट्रीय भाषा, हम-तुम या एक-दो पीढ़ी की बनाई हुई नहीं अपितु वेदर्षि से लेकर दयानन्द जी तक की अनेक पीढ़ियों के पण्डितों और महन्तों ने अपने अहेतुक और सतत प्रयत्न द्वारा इस गीर्वाण-वाणी को सम्मिलित राष्ट्रभाषा का पद प्राप्त करा दिया है। हम हिन्दुओं की समान धर्मभाषा और लिपि जैसी संस्कृत और नागरी वैसे ही हमारी व्यावहारिक राष्ट्रभाषा हिन्दी और राष्ट्रलिपि नागरी !

गत सहस्त्र वर्षों से यह हमारी व्यावहारिक राष्ट्रभाषा अपने आप बनती आई है और अब तो हमने उसे हेतुतः पूर्णरूपेण पद्धति के अनुसार राष्ट्रभाषा का अधिकार अर्पण कर दिया है। वित्त भर छोटे से ब्रिटेन में वेल्श और स्कॉच गौण भाषायें, जर्मनी में चार प्रमुख भाषायें, स्विटजरलैंड और पोलैंड जैसे मुट्ठी भर लोगों में भी तीन तीन सरकारी भाषायें चलते हुए भी वे जब "राष्ट्र" की पदवी प्राप्त कर सकते हैं तो जो हम तीस कोटि हिन्दुओं की धर्म-भाषा और धर्म-लिपि संस्कृत और नागरी तथा व्यवहार भाषा हिन्दी है उनका भाषा-ऐक्य की कसौटी की दृष्टि से भी 'राष्ट्र' इस पदवी पर पैतृक अधिकार होना ही चाहिए।

समान इतिहासः—अमेरिका की पाठशालाओं में विद्यार्थियों को एक राष्ट्रीय गीत सिखाया जाता था। उसमें उनकी राष्ट्रीय एकता एवं महत्ता के गौरव का एक कारण बताने वाला वाक्य इस प्रकार था

कि "दो सौ वर्ष का समान भव्य भूत काल हमारे पीछे खड़ा है, और अनन्त भविष्य काल ! एक इतिहास और एक भविष्य ! इन दोनों शक्तियों से हम एकजीवी राष्ट्र हैं !" दो सौ वर्ष के समान भूतकाल से, एकत्र निवास से सुख-दुख के समान उपभोग से यदि अमेरिका के सदृश अनेक वंश, जाति तथा भाषा के भेदों से भरा हुआ जनपद एकजीवी राष्ट्र हो सकता है तो पौराणिक रामकृष्ण का, श्रुति-रामायण-महाभारत का युगगण्य काल यदि छोड़ भी दिया जाय तो भी हम हिन्दुओं के पीछे चन्द्रगुप्त से लेकर दो सहस्र से अधिक वर्षों के इतिहास का जो समान, महनीय और भव्य भूतकाल हिमालय के समान खड़ा है, उसके कारण यह हिन्दू जाति लक्षणों की कसौटी से भी एकजीवी और एकसन्धि राष्ट्र अवश्यमेव है।

सप्त राष्ट्रों में विभाजित डच, डेन्स, आंग्ल, नार्मनों के आक्रमणों द्वारा बारम्बार पराभूत और गुलाबी युद्धादिक (War of Roses) यादवी से पुनः पुनः रक्तरञ्जित इङ्गलैण्ड का इतिहास जब उस राष्ट्र का समान राष्ट्रीय इतिहास हो सकता है, गत शताब्दी तक एक दूसरे की छाती पर परकीय फ्रेंच आदि शत्रु को भी देशद्रोह करके साथ देने वाले भिन्न भिन्न जर्मन प्रान्तों का इतिहास भी भाषा-संस्कृति-देश-उद्देश्य आदि समान बन्धनों के प्रताप से जर्मन राष्ट्र का यदि समान और राष्ट्रीय इतिहास कहलाया जा सकता है तो हम हिन्दुओं को गत दो हज़ार वर्षों का यह अखण्ड, महनीय, समान और भव्य भूतकाल के इतिहास को भी हमारे राष्ट्रीय इतिहास का स्थान प्राप्त करने में समर्थ होना चाहिए। अकेले चीन को छोड़ कर संसार के किसी भी वर्तमान राष्ट्र को इस प्रकार की ऐतिहासिक सम्पत्ति नसीब नहीं है।

पुण्यभूमिः—इस लेख में केवल बुद्धिवादियों से शुद्धतर्क कोटि-क्रम से ही बोलना है अतएव हिन्दू जाति को एकजीवी राष्ट्र करने में

साधनभूत होने वाले समान धर्म-बन्धनों का हम उल्लेख नहीं करते हैं। किन्तु मनुष्य जाति के आज के मनोविकास की भूमिका में कोट्यवधि विभिन्न व्यक्तियों को एक सूत्र में पिरो कर उनका एक प्रबल गुट बनाने में समान पुण्यभूमि यह साधन अत्यन्त परिणामकारक है—यह बात प्रत्यक्ष सिद्ध होने से बुद्धिवादियों को भी उसमें आक्षेप नहीं हो सकता। अतएव उसका विचार भी आवश्यक हो जाता है। सारे मुसलमान मक्का की ओर मुंह करके नमाज़ पढ़ते हैं। पुण्यभूमि एक होने के कारण अन्योन्यविरुद्ध अथवा असम्बद्ध जाति एक हो उठती है। एक दूसरे से छुरी और कद्दू जैसा प्रेम रखनेवाले सारे योरप के राव-राजा एकत्रित होकर फिलिस्तीन पर सौ साल तक जूझते रहे—केवल इस लिए कि वह थी उनकी पुण्य भूमि (Holy land), उनके धर्म क्षेत्र की भूमि, पैगम्बर की जन्मभूमि! संगठित राष्ट्रीय बल का इस प्रकार अत्यन्त प्रबल घटक हो सकने वाली इस पुण्य भूमि के विषय में तो हम हिन्दू जाति के समान एकाध ही दूसरी जाति भाग्य-शाली होगी। क्योंकि जो हमारी पितृभूमि वही हमारी पुण्य-भूमि—धर्मभूमि। हम सारे हिन्दुओं की, चाहे वे सनातनी, सिक्ख, जैन अथवा लिंगायत, आर्य अथवा बौद्ध क्यों न हों, हमारी सबकी ही पितृभूमि एक, पुण्यभूमि एक! यह आसिन्धु-सिन्धु-पर्यन्त भारतवर्ष!! केवल पितृभूमि, केवल देश एक होने से इङ्गलैण्ड के समान जनपद भी एकजीवी गुट होते हैं, केवल पुण्यभूमि एक होने के कारण जब यहूदी और मुस्लिम जनपद एकजीवी गुट हो रहे हैं, तब जिस हमारी हिन्दू जाति की पितृभूमि और पुण्यभूमि एक ही है वह एक जीव, एक प्राण, एक राष्ट्र निश्चित रूप से है ही।

संस्कृतिः—राष्ट्रियत्व के अन्यान्य जो घटक समझे जाते हैं उनका पृथक उल्लेख करना इस लेख की मर्यादा के बाहर है। इसलिए इन

सबका समावेश जिसमें हो सकेगा ऐसी संस्कृति के नाम से ही उन्हें दिग्दर्शित करना ठीक होगा। हम हिन्दुओं के नाम समान हैं। मुहमडन लॉ, इङ्गलिश लॉ वैसा ही हिन्दू लॉ—हिन्दू निबन्ध-शास्त्र द्वारा साधारण रीति से कोट्यवधि हिन्दुओं का जीवन नियमित है। हमारे त्योहार समान हैं। दिवाली देखिए! बंग से सिन्ध और नैपाल से मद्रास तक सारा हिन्दू हिन्दुस्थान एक समयावच्छेद से जगमगा उठा है। यह भैयादूज! घर घर बहिन भाई की प्रेम के नीराञ्जन दीप द्वारा मङ्गल कामना कर रही है। यह गोकुल अष्टमी! इस सुविशाल महादेश में कोट्यवधि हिन्दू—यह तीस कोटि का सारा राष्ट्र का राष्ट्र मध्यरात्रि के समय हाथ में गुलाल और खीलें लेकर भगवान् श्रीकृष्ण की जन्म-वेला की प्रतीक्षा माता देवकी की ही अति उत्सुकता से और उत्कटता के साथ कर रहा है—वह जन्म होते ही काश्मीर से कन्या-कुमारी तक एक ही समय एक दम कोटि कोटि हिन्दुओं का आनन्द उमड़ आता है। रङ्गपञ्चमी को! दरिद्र कुटिया में रहनेवाली बाल-बालिकायें, राजधानी में हाथी पर सुवर्ण सिंहासन पर राज-रजवाड़े, सारा हिन्दुस्थान, सारा हिन्दू भारत रंग उड़ाता हुआ लाल-लाल दिखेगा। इन त्योहारों की धार्मिक भावना को छोड़ दिया तो भी इन सामाजिक संस्कारों से एक रस हुआ यह जनपद यदि "राष्ट्र" नहीं कहा जा सकता है तब संसार में राष्ट्रीय संस्कृति जैसी कोई वस्तु ही नहीं, यह कहना पड़ेगा।

संख्याबलः—अधिष्ठान के समान ही संख्याबल भी राष्ट्रियत्व का पृथक् लक्षण मानते हैं, किन्तु इस प्रकार का प्रमाण पत्र हिन्दुओं से माँगने का अर्थ होगा कुबेर से ज़मानत मांगना। जिन्हें पृथक् देश नहीं और यदि है भी तो शतकानुशतक से उनके अधिकार में नहीं, जिन्हें भाषा की एकता और संस्कृति के कारण ही एक कहा जा सकता है उन

पोलैण्ड, हंगेरी, रूमानिया, स्पेन, पोर्तुगीज आदि का एकाध कोटि, अर्ध कोटि संख्याबल भी "राष्ट्र" कहलाने के लिए पर्याप्त हो सकता है तो इस हिन्दू जाति का संख्याबल संदिग्ध बाज़ारू लोगों की गिनती छोड़ कर केवल कट्टर अनुयायी ही गिने जायें, तो भी तीस कोटि है! एक देश, एक भाषा, एक लिपि, एक इतिहास, एक भूतकाल, एक भवितव्य, एक संस्कृति, एक पितृभूमि, एक पुण्यभूमि इतने आत्मीय सम्बन्धों से एकजीव तीसकोटि संख्याबल का यह हिन्दू राष्ट्र संसार के महनीय राष्ट्रों में से भी एक महत्तम राष्ट्र है।

परन्तु इन सारे ही बन्धनों से भी अधिक जिस एक दृढ़ बन्धन से हम सारे हिन्दू एक राष्ट्रीयता प्राप्त कर सकते हैं, एकजीव हो सकते हैं तथा जिस बन्धन के पाये पर ही अन्य कोई भी कहने योग्य सम्बन्ध न होते हुए भी जनपद का 'राष्ट्र' बन सकता है वह अत्यन्त तीव्र और शक्तिमान राष्ट्रबन्धन है हमारी इच्छा!

हमारी इच्छा:—यही वह महान् बन्धन है। हमें एक हिन्दूराष्ट्र चाहिए इसीलिए हम हिन्दू एक राष्ट्र हैं। हमें हिन्दू के नाम से ही जीवित रहना और इसी नाम से मरना पसन्द है, इसीलिए हम हिन्दू हैं। नदी पहले और पुल बाद में, वैसे ही इच्छा पहले, राष्ट्र पहले और व्याख्या बाद में। सिकन्दर ग्रीक ने आकर जिन ब्राह्मणों के टुकड़े किए; मुसलमानों ने गुरु तेग़ बहादुर का सर उड़ाया; मतिदास के मस्तक पर आरी रखने पर भी जब वह हिन्दुत्व छोड़ने के लिए तैयार नहीं हुआ इसीलिए उसे जैसे का तैसा खड़ा-खड़ा ही चीर डाला; बन्दा वीर का मांस तप्त लोहे के गज भोंक कर टुकड़े-टुकड़े कर डाला; शम्भाजी की आँखें फोड़ीं, जीभ काट डाली; हरपाल को छील डाला; कवि कुलेश को जीजान से मार डाला; टीपू के हाथों अपना धर्म परिवर्तन न हो

इसलिए जिन वीरों ने अपनी जीभ खींच कर प्राण दिए—इन हुतात्माओं ने जो प्राण त्याग किए वे हिन्दू शब्द की तुम्हारी पुस्तकीय व्याख्या तथा व्याकरण की मात्रा की गलती न होने पाये इसलिए किये थे क्या? नहीं! बिलकुल नहीं!! हिन्दुत्व के अतिरिक्त उन्हें जीवन ही नहीं भाता था, वे जीना ही नहीं चाहते थे—"धर्म हेतु साका तिन किया, सर दिया पर शिरह नहीं दिया।" उनकी तीव्र इच्छा ही उनकी हिन्दुत्व की व्याख्या, उनका हृदय ही उनका व्याकरण!

हिन्दुओ! अपना राष्ट्र गत दो सहस्र विशुद्ध ऐतिहासिक वर्षों तक जो जीवित रह सका वह केवल यदृच्छया जीवित रह गया इसलिए ही जग सका, ऐसा जो कहते हैं वे मूर्ख अथवा लुच्चे हैं। हम जीवित रहे क्योंकि जीवित रहने के लिए हम ही सब से योग्य थे (We survived because we proved fittest to survive.) उन परिस्थितियों से जूझने के लिए जो जो भूलना आवश्यक था वह हम भूल गये और जो कुछ अपनाना आवश्यक था वह सीखे भी। और इसलिए उन परिस्थितियों पर भी विजय पाकर जीवित रह सके।

संसार पर विजय पाता हुआ सिकंदर आया, उसके पास हम से बहुत कुछ अधिक था। उसने उस हिसाब से आक्रमण किया किन्तु शीघ्र ही चाणक्य और चन्द्रगुप्त ने ग्रीकों की शस्त्र-संघटना समेत उन्हें आत्मसात् कर लिया। जो अपने मण्डल में कच्चा था उसे निकाल कर पक्का कर लिया।

ग्रीकों से सवाई होकर उन्हें केवल सिन्धु-पार ही नहीं अपितु हिन्दु-कुश के भी उस पार मार कर भगा दिया। हूण आये, शक आये। उन्होंने समस्त एशिया, आधा योरप विध्वस्त किया था, इतने वे बलशाली थे। उनके धड़ाके से ही आधा भारत काँप उठा था। किन्तु

दो शतक तक निरन्तर जूझते हुए, उनसे लड़ने के लिए जिन नए शस्त्रों की, नए अनुसन्धानों की आवश्यकता थी उन्हें शीघ्रातिशीघ्र अपना कर, उन हूणों के प्रबलतम सम्राट् का शिरच्छेद किया। एक के पीछे एक अनेक समर में शकों की धज्जियाँ उड़ा दीं, विक्रमादित्यों, हूणारियों और शकारियों की परंपरा की परंपरा निर्माण करके भारतीय विजय के जयस्तम्भ स्थान-स्थान पर खड़े कर दिए। वे आज भी साक्षी दे रहे हैं। उस समय, उस पीढ़ी में हम जो पुनः पुनः बलशाली और श्रेष्ठ हो सके वह इसीलिए कि हमने अपने दांव, आचार, दोष, व्यंग एक दम चटाक से बदल डाले। सत्ययुग का जो टिकने वाला सा नहीं प्रतीत हुआ उसे कलिवर्ज्य ठहराया और जो नया सीखने योग्य हुआ उसे कलिग्राह्य ठहराया। स्मृति में जो परिवर्तन इष्ट था उसे किया, जो बिगड़ गया था उसे सुधार दिया और जीवित रहे। क्षत्रियों ने रणाग्नि में और ब्राह्मणों ने शुद्धिकरण यज्ञाग्नि में यवन-हूण शकों को जला कर ऐसा भस्म किया, उदरसात् कर लिया, कि इस समस्त भारतवर्ष में ग्रीक अथवा हूण अथवा शक कोई नाम मात्र को शेष न रहने पाये। बाद में मुसलमान उठे। उन्होंने सीरिया, ईरान, बैबिलोन, अफ्रीका नहीं के बराबर कर दिया। हम उनकी जयिष्णु वृत्ति के सामने कम पड़ गए। बड़ा प्रलय का समय आया, फिर भी छह सौ साल तक हम उनसे जूझे पर दम न छूटने दिया। अन्त में मुसलमानों के लड़ने के लिए पर्याप्त साधन-सामग्री एवं सामर्थ्य हम अपने में लाये; उन्हीं के शस्त्रास्त्र, उन्हीं के दांव-पेंच सीख कर उन्हीं के हथियार छीन कर हिन्दुस्थान भर में हिन्दू मात्र जाग उठा! मुहम्मद क़ासिम से ले कर सन् १६२७ तक साधारणतः जहाँ जहाँ हिन्दू-मुस्लिम लड़े वहां हिन्दू का पराभव निश्चित था परन्तु सन् १६२७ से १७३९ तक जहाँ जहाँ मुस्लिम लड़ने आये वहाँ वहाँ हिन्दू ने उन्हें पछाड़ दिया। शिवाजी

राजपूत, गुरखा, बुंदेला, मराठा—हिन्दुओं के लक्षावधि वीरों का मानों वन का वन उठ खड़ा हुआ। सारा हिन्दुस्थान पुनरपि हिन्दू समाज के अधीन लाया गया। शत-शत युद्धों में हिन्दुओं ने एक के पीछे एक विजय प्राप्त की, पंजाब में सिक्खों का राज्य, नेपाल में गुरखे और दिल्ली से त्रिचनापल्ली—तंजोर तक मराठों का राज्य!

अतएव, हम जीवित रहे तो विजयी होकर। परिस्थिति से टक्कर ले सके इस लिए जीवित रहे। किन्तु यह जितना सत्य है उतना ही सत्य यह भी है कि इसके आगे भी वर्तमान परिस्थिति से टक्कर लेने में हम टिक सकेंगे। केवल आज तक जीवित रहे इस लिए बैठे बैठे अब भी जीवित रह सकेंगे सो नहीं। अब हमारा सामना विज्ञान से है। इस लिए जो जो रूढ़ियां, आचार, शास्त्र, शस्त्र विज्ञान के ढांचे में जोख परख कर सोलह आने ठीक उतर सकेगा, वही आज के समय का हमारा हिन्दू धर्म। जो जो हल्का, कम टिकाऊ, उसे जला कर भस्म कर दो; वही इस युग का अधर्म, इस काल का कलिवर्ज्य! सौभाग्य से अपने हिन्दूराष्ट्र की नैसर्गिक शक्ति फिर उद्दीपित होती हुई दिखाई दे रही है। यदि तनिक धैर्य के साथ और विज्ञान के हथियार से ही विज्ञान से लड़ेंगे तो संकट से छिड़ी हुई लड़ाई में हम निश्चित विजयी हो कर रहेंगे, हिन्दू रह कर जीतेंगे। जब मरना होगा तब या तो सेनानी सदाशिराव भाऊ के समान मरेंगे या गुरु गोविन्द सिंह के समान! किंतु कायर के समान हिन्दू से अहिन्दू होकर नहीं, कदापि नहीं!

जन्म-जात जाति-भेद को तोड़ डालो!

तस्मान्नगोऽश्ववत्कश्चित् जातिभेदोऽस्ति देहिनाम् ।
कार्यभेद निमित्तेन संकेतः कृत्रिमः कृतः ॥

(भविष्य पुराण)

आज कल हमारे हिंदू-समाज में जो जाति-भेद प्रचलित है उसको यद्यपि जन्म-जात कहा जाता है तथापि वह है केवल "पोथी-जात" ।

जन्म-जात शब्द का ठीक अर्थ होता है जन्म से ही भिन्न जाति—जैसे गाय, घोड़ा, मनुष्य, बन्दर आदि जातियाँ। इसी प्रकार यदि ब्राह्मण, क्षत्रिय, कायस्थ, मराठा, राजपूत, जाट, चमार, भंगी आदि हिन्दुओं की आज की मानव-जातियों में जन्म-जात भेद होता तो उसको मिटा देना हमारे तुम्हारे लिये असम्भव हो जाता। परन्तु संकेश्वर पीठ के शंकराचार्य भी आज इस भय से भयभीत हुए हैं कि सुधारक जाति-भेद को नष्ट न कर दें। इसी लिये वे "जातिभेद को नष्ट न करो" इस प्रकार प्रार्थना करते और धमकाते हुए प्रचारार्थ निकले हैं। इस प्रचार-कार्य से साफ़ प्रतीत होता है कि वह इस बात को—चाहे मन में ही क्यों न हो—मानते हैं कि यह तथाकथित जाति-भेद ऐसा जन्म-जात नहीं है जिसको केवल ब्रह्मदेव ही बदल सकें, बल्कि कोई भी मनुष्य जब जी चाहे तब टोपी की तरह इसे बदल सकता है। यह कृत्रिम है, माना हुआ है, सांकेतिक है। चमार को न छुओ, भंगी का पानी न पिओ, नहीं तो वर्ण-व्यवस्था की समाप्ति हो जायेगी, जाति-भेद नष्ट होकर संकरता बढ़ेगी इत्यादि व्यर्थ की बातें कहते हुए सनातनी शंकराचार्य न जानते हुए भी यह बात बिना शर्त

स्वयं मान लेते हैं कि यह वर्ण-व्यवस्था और जाति-भेद जन्म-जात नहीं है, केवल पोथी-जात है। किसी पोथी में लिखे होने से ही अमुक कुलों का गुट ब्राह्मण, दूसरों का क्षत्रिय, तीसरों का भंगी मान लिया गया है और इसी आधार पर 'मेरी जाति ब्राह्मण है और उसकी भंगी' आदि बातें मान ली गई हैं। गाय ने घोड़ी को छू दिया। उसके चनों में से दो चार वह खा गई या गाय के पात्र में से थोड़ा पानी घोड़ी पी गई। इससे गाय और घोड़ी की जाति एकाएक बदल गई। गाय के सींग ग़ायब होकर या घोड़ी के सींग निकल कर, देखते ही देखते, कहीं घोड़ी की गाय बन गई; और उसने रंभाना शुरू कर दिया। या कहीं गाय से घोड़ी बन गई और हिनहिनाने लगी। ऐसा होते ही पश्चात्ताप से प्रेरित होकर घोड़ा पंचगव्य प्राशन करते ही फिर अपनी गाय की गाय और घोड़ी की घोड़ी बन गई। यदि ऐसा होता भी तो उनके जाति-भेद के लिये जो जन्म-जात शब्द हम प्रयुक्त करते हैं वह ब्राह्मण, वैश्य और शूद्र के जाति-भेद के लिए भी प्रयुक्त कर सकते। परन्तु ऐसा कुछ भी हो जाय तो भी गाय की घोड़ी और घोड़ी की गाय नहीं बन सकती। पर ब्राह्मणादिकों की जातियाँ तो एकत्र बैठ कर कढ़ी का सपाटा लगाते ही फुर्र उड़ जाती हैं और पंचगव्य-प्राशन करते ही फिर अपनी अपनी शाखाओं पर आ बैठती हैं। अर्थात् हमारे हिंदू-समाज के अन्तर्गत तथाकथित जन्म-जात जाति-भेद वास्तव में जन्मजात नहीं है प्रत्युत पोथी-जात—माना हुआ—है। यह बात तो इस शंकराचार्यी शास्त्रार्थ से ही सिद्ध हो जाती है जो कढ़ी का सपाटा लगाते ही पृथक् होना और पंचगव्य प्राशन करते ही जुड़ जाना मानता है।

क्या यह पोथी-जात जाति-भेद हमारे हिंदू-राष्ट्र के धारण या उद्धारण में सहायक हो रहा है? यदि कहा जाय कि आज नहीं हो

रहा है तो क्या हुआ, वह पहिले कभी सहायक रहा होगा, तो यह कथन भी यहां पर अप्रस्तुत है। रायगढ़ का क़िला किसी ज़माने में महाराष्ट्र राज-शक्ति का एक आधार-स्तम्भ था। परंतु इसी लिये—आज उसकी छिन्न-भिन्न अवस्था में भी और वैमानिक युद्ध-युग में भी—क्या महाराष्ट्र की राजधानी उसी को बनाना चाहिये ? पहले कभी यह पोथी-जात जाति-भेद राष्ट्रधारण में पोषक हुआ होगा, उस समय उसको "धारणात् धर्ममित्याहुः" ठीक था। लेकिन आज यदि वह राष्ट्रधारण में पोषक न हो तो उसी कारण से और उसी सूत्र के अनुसार उसको अधर्म समझा जाना चाहिये। यह तो हम भी मानते हैं कि वह जन्म-जात नहीं है और पोथी-जात है, इसी लिए अधर्म सिद्ध नहीं हो सकता। क्योंकि पोथी-जात संकेत भी कभी कभी राष्ट्रधारण में पोषक होते हैं। परन्तु हमारा कहना केवल इतना ही है कि यदि वह आज राष्ट्रहित में घातक हो तो उसे आज पातक समझना चाहिये। पहले चाहे वह पुण्य रहा हो परंतु आगे चल कर राष्ट्र के पतन का कारण हुआ और आज भी हो रहा है इसलिये आज तो इसको पातक ही समझना चाहिये।

आजकल प्रचलित पोथी-जात जाति-भेद के चार मज़बूत पैर हैं अर्थात् (१) स्पर्श-बन्दी, (२) व्यवसाय-बन्दी, (३) रोटी-बन्दी और (४) बेटी-बन्दी। इन चार पैरों पर चलने वाला यह "पोथी-जात जातिभेद" एक भयानक चतुष्पाद प्राणी है। इन में से उसका आगे का "व्यवसाय-बंदी वाला" पैर लगभग पहले से ही लचका हुआ था। और अब तो बिलकुल निकम्मा सा हो गया है। अतः अब उसके विषय में कुछ लिखने की आवश्यकता ही नहीं है। इतने पर भी, व्यवसाय-बन्दी जो टूट गई वह क्षत्रिय की तलवार या शूद्र के हंसिए से नहीं, बल्कि जातिभेद और चातुर्वर्ण्य की सालस्वर के अत्यधिक महिमा

आने वाले ब्राह्मणों के दम्भ से। सनातनी शास्त्री चिल्लाते हैं—"रोटी-बन्दी न तोड़ो, नहीं तो चातुर्वर्ण्य की जड़ पर ही कुठाराघात होगा, धर्म डूब जायगा"। परन्तु शंकराचार्य कभी भूलकर भी ऐसा नहीं कहते कि व्यवसाय-बन्दी को न तोड़ो। वे आसानी से साफ तौर पर भूल जाते हैं कि व्यवसाय-बन्दी ही जाति-भेद की आधार-शिला थी, और जिसने प्रमुखतः उसको उखाड़ दिया वह ब्राह्मण ही जाति-भेद को—धर्म के किले को—ढा देने के पाप का प्रथम भागी है। ब्राह्मण का पेट उसका अपना शास्त्रोक्त व्यवसाय करने से भरता न था। तब उसने मनमाने व्यवसाय को अपनाना शुरू कर दिया। आज ब्राह्मण कहे जाने वाले लोग दर्जी, लोहार, बढ़ई और विलायती बूट बेचने वाले चमारों का भी पेशा करते हैं। यह क्षम्य है ! सनातनी शास्त्री और शंकराचार्य भी इसका समर्थन करते हैं कि यह आपद्धर्म है। क्षत्रिय-वैश्यों ने भी ब्राह्मणों का अनुकरण किया। परन्तु उन धर्मज्ञ सज्जनों का कहना इतना ही है कि यद्यपि ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों ने आपद्धर्म के कारण व्यवसाय के विषय में मनुस्मृति की थोड़ी धता बता दी, तो भी भंगी-चमारों को चाहिए कि मनुस्मृति के अक्षर अक्षर का पालन करें। मरे जानवरों की खाल खींचें और टट्टियाँ साफ करें। उनको दूसरा पेशा नहीं करना चाहिए। मानो 'आपद्' ब्राह्मण-क्षत्रियों पर ही आती है। भंगी को आपद्धर्म का लाभ देने वाली यह आपद् कभी छूती ही नहीं। आखिर ये अछूत ही तो हैं ! उनको कोई भी नहीं छूता। इसी लिए तो वह भली भाँति न तो जीवित रहते हैं और न भली भाँति मरते ही हैं !

व्यवसाय-बन्दी को तोड़कर इन्होंने स्वयं अपने सनातनी जाति-भेद की कमर तोड़ दी है। परन्तु इसकी कल्पना तक इन सनातनी शास्त्रियों को नहीं होती। इसी कारण आजकल के सनातनी

समाचार-पत्रों में प्रत्येक पृष्ठ से विनोद टपकता है। अग्र-लेख देखो तो वहाँ लिखा होगा, "सब वर्णों को अपने शास्त्र-विहित कर्म करने चाहियें; जन्म-जात जाति-भेद के सनातन आचरण को नहीं छोड़ना चाहिये।" इस प्रकार मुक्त-कण्ठ से कहे हुए वाक्यों के नीचे देखो तो मालूम होगा कि वहीं किसी जोशी ने हल आदि बनाकर लोहार का काम कर रक्खा है या किसी मिश्र ने काँच का कारखाना भली भाँति चला रक्खा है। इसलिये उसका अभिनन्दन करने के लिये यह फ़तवा दिया हुआ मिलेगा कि ब्राह्मणों को खेती करने में ननुनच नहीं करना चाहिये, या ब्राह्मणों को सरकारी नौकरियां नहीं मिलतीं इस लिये इस अन्याय का तीव्र विरोध करना चाहिये, इत्यादि। उनके ख़्याल में यह बात आती ही नहीं कि मिश्र ब्राह्मणों ने जो कांच की भट्टी पूर्णरूप से सिद्ध की है, उसमें वर्णाश्रम-विहित व्यवसाय-बंदी का ईंधन खुले हाथों जलाया गया है।

कुछ भी हो, स्वयं ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्यों ने ही जाति-भेद के आगे के उन दो पैरों में से व्यवसाय-बंदी के पैर को निकम्मा कर दिया है। इस लिये अब यह ख़्याल हो गया है कि जो चाहे जिस व्यवसाय को अपना सकता है। इससे उसकी जाति नष्ट नहीं होती। दूसरा आगे का पैर है स्पर्श-बंदी, जिससे सात करोड़ लोगों को अस्पृश्य माना जाता था। परंतु स्पर्शबंदी-नाशक आंदोलन की लहर भारत के कोने कोने में व्याप्त होगई है। इस लिए अब वह (स्पर्शबंदी) भी रसातल में पहुँची हुई के समान ही है। अस्पृश्यता को क्यों दूर करना चाहिये और उससे कितनी भयंकर हानियाँ हो रही हैं, इन बातों की चर्चा काफ़ी से अधिक हो चुकी है। उसका अंत कितनी जल्दी होता है, अब केवल यही देखना रह गया है।

जाति-भेद रूपी इस चतुष्पाद प्राणी के व्यवसाय-बंदी और

स्पर्श-बंदी ये दो पैर निकम्मे हो जाने के कारण यद्यपि उसकी प्रगति रुक गई है तथापि उसी जख़्म से आग बबूला होने के कारण वह अब रोटी-बंदी और बेटी-बंदी इन दो पिछले पैरों पर खड़ा होकर गर्व से गरज रहा है।

जो यह जानते हैं कि इस पोथी-जात जाति-भेद से हिंदुस्थान को अपरिमित हानि हो रही है उनको चाहिये कि उसके बचे हुए जो दो प्रबल अवयव हैं उन्हीं के उच्चाटन पर अपनी सब शक्ति खर्च कर दें। रोटी-बंदी और बेटी-बंदी यही आज कल का जाति-भेद है। इन दो प्रथाओं को केवल ब्राह्मण-क्षत्रिय ही गले लगा कर नहीं बैठे हैं, बल्कि भंगी-चमार तक सब जातियाँ यह आत्म-घातक और राष्ट्र-घातक पातक कर रही हैं। ब्राह्मण हमारा पानी नहीं पीता इसलिये उस पर हँसने वाले तथा निंदक अनेक सत्यशोधक मराठे (शूद्र) स्वयं चमार-भंगी का पानी पीने के लिये तैयार नहीं होते। किम्बहुना, चमार भी भंगी का पानी पीने का प्रसंग आते ही ब्राह्मण और मराठे की तरह जाति-भेद का कट्टर अभिमानी बन जाता है। इतना हीं नहीं वरन् वह ब्राह्मण की अपेक्षा भी अधिक आडम्बर दिखाने लग जाता है। इस रोटी-बंदी के पाप को किसी एक वर्ण के मत्थे नहीं मढ़ा जा सकता। इस जातीय अहंकार के विषय में भंगी से लेकर ब्राह्मण तक सब जातियाँ समान रूप से दोषी हैं। अस्तु, अस्पृश्यता की प्रथा कितनी अन्याय्य, कितनी हानिकारक और कितनी मूर्खता-पूर्ण है, अतः इसकी चर्चा साधक प्रमाणों के साथ जिस प्रकार देश भर में हो रही है, और उसका अंत करने के लिये जिस प्रकार सक्रिय विरोध प्रारम्भ हुआ है, वैसे ही अब रोटी-बंदी और बेटी-बंदी के विषय में भी होना चाहिये। इस चतुष्पाद प्राणी के पोथी-जात जाति-भेद के इन बचे हुए दो

पिछले पैरों को जहाँ निकम्मा बना दिया कि यह कपट-कलेवर धड़ाम से नीचे गिर कर अपने आप शिथिल हो जाएगा।

रोटी-बंदी और बेटी-बंदी के दोनों प्रश्नों में से प्रथम (रोटी-बंदी) का विरोध शीघ्रातिशीघ्र करना चाहिये। कारण यह है कि पोथी-जात जाति-भेद का यह पैर अधिक निकम्मा है। एक बार इसको तोड़ दिया कि दूसरा भी आज की अपेक्षा दुर्बल हो जाएगा और फिर आसानी से तोड़ा जा सकेगा। इसलिये आगे की पंक्तियों द्वारा रोटी-बंदी के प्रश्न की तरफ़ ही हम हिंदू-समाज का ध्यान विशेष रूप से आकर्षित करना चाहते हैं।

साधारण रीति से देखने में अस्पृश्यता की तरह रोटी-बंदी की प्रथा अन्याय्य या अनीतिकारी नहीं जान पड़ती। परंतु अस्पृश्यता के विरुद्ध कमर कस कर उठ खड़े होने वाले सुधारकों के ख़्याल में यह बात अच्छी तरह नहीं आई कि अस्पृश्यता की अपेक्षा इस रोटी-बंदी की प्रथा से अपने हिंदू-राष्ट्र की अपरिमित हानि हुई है। इस प्रथा से जो हानियाँ हुईं और होने वाली हैं उनका संकलन और स्पष्टीकरण अभी तक जैसे होना चाहिये वैसे नहीं हुआ। हम स्थानाभाव के कारण यहाँ विस्तारपूर्वक लिख नहीं सकते। केवल दिग्दर्शन के लिये ही हमने नीचे विवेचन किया है।

१—बाहर के हिन्दू-राज्य नष्ट होने का एक मुख्य कारण यह रोटी-बंदी ही है। बौद्ध काल से बहुत पहले भरतखंड के बाहर दक्षिणी अमेरिका के मेक्सिको से लेकर अफ्रीका के मिसर तक हिन्दू-राज्य और हिन्दू-उपनिवेश बिखरे हुए थे। सैंकड़ों हिन्दू उपदेशक, सैनिक, कलावान, और व्यापारियों का प्रवाह हिन्दू-चीन (इण्डो-चायना), फिलीपाइन्स, स्याम, जावा, ब्रह्मदेश, अरब और मिसर की

तरफ़ अव्याहत आता जाता था। परंतु पराये हाथ का खाने पीने से ही अपना धर्म और जाति चले जाने की इस विक्षिप्त कल्पना के हिन्दू समाज में प्रवेश होते ही हमारे पतन का श्रीगणेश हुआ। पहले पहल समुद्रगमन बन्द हुआ। हिन्दू धर्म ने "समुद्रयातुः स्वीकारः" कलियुग में जो निषिद्ध माना इसका कारण केवल रोटी-बंदी की मूर्खता ही है। इससे समुद्रगमन करके चढ़ाई और यात्रा करने वाले हजारों सैनिकों, पुरोहितों, व्यापारियों और मजदूरों ने बाहर के हिन्दू-राज्यों के सम्पादन तथा उनकी रक्षा के लिए जाना छोड़ दिया। मातृ-भूमि के पृष्ठ-भाग के इस अखंड आधार के टूट जाने से उधर के हिन्दू-राज्य और हिन्दू-उपनिवेश मुसलमानों जैसे आक्रमक और आततायी धर्मान्धों की आंधी में नामशेष हो गये। आज यदि इंगलैण्ड में कोई बृहस्पति ऐसा धर्म-नियम बना दे कि सिंधु-गमन करने से अंगरेजों की उच्च संस्कृति नष्ट हो जाती है, नेटिवों या निग्रो के साथ पानी पीने से अंगरेजों की जाति चली जाती है, इसलिए आगे से कोई भी अंगरेज परदेश गमन न करे तो अंगरेजी साम्राज्य की और उपनिवेशों की आगामी दो सदियों में जो दुर्दशा होजायगी वही हमारे बृहस्पति द्वारा रोटी-बंदी और तदुत्पन्न सिन्धु-बंदी का धर्म-नियम बनाए जाने से भरतखंड के बाहर के हमारे साम्राज्य और उपनिवेशों की हुई।

२—विश्व-व्यापी व्यापार और नौयान नष्ट होने का भी एक प्रबल कारण यही रोटी-बंदी का नियम था। राज्य या उपनिवेश स्थापित करने के लिए भरतखंड के बाहर स्थायी निवास करना तो दूर रहा, बड़े बड़े व्यापारी जहाज़ लेकर अफ्रीका तक करोड़ों रुपयों का सामुद्रिक व्यापार करना भी निषिद्ध हो गया। रोटी-बंदी के कारण ही वह अधर्म हो गया। रोम में एक समय हिन्दुस्थान का व्यापार इतना उन्नत हो गया था कि उसको रोकने के लिए रोम के बादशाह को 'हिन्दी माल का

बहिष्कार करो" कह कर स्वदेशी आन्दोलन करना पड़ा था। हिन्दुओं का वह विश्वव्यापी व्यापार और वे जहाज़ कहाँ डूब गये? किसी महासागर के प्रचण्ड तूफ़ान में? नहीं, संध्या की आचमनी के तूफ़ान में! रोटी-बंदी, सिंधुबंदी, परदेशगमन-बंदी सिद्ध करने वाले एक अनुष्टुप (श्लोक) में! इधर भूमि की "अटक" उधर समुद्र की रुकावट। इसका परिणाम? मलबार के सामुद्रिक (झामोरिण) हिन्दू राजा ने परदेश में व्यापार करना चाहा। उसको अपने कुछ हिंदू प्रजाजनों को पहले मुसलमान बनाकर विदेश में भेजना पड़ा। यह अविश्वसनीय पागलपन एक विश्वसनीय ऐतिहासिक घटना है। आज कोकण के कंगाल मुसलमान अफ्रीका जाकर पैसा कमाते हैं और वापस लौटकर अपने देहातों में मालदार होकर बैठते हैं। पर उसी गाँव का हिंदू भंडारी सदियों से कंगाल हो रहा है। कारण यह है कि सामुद्रिक साहस में उस मुसलमान की अपेक्षा कम न होते हुए भी केवल हिंदू होने के कारण वह समुद्रगमन नहीं कर सकता। पराये हाथ का खाते ही इसकी जाति चली जाती है, धर्म डूब जाता है। रोटी-बंदी की बेड़ी उसको उसके चूल्हे में, दरिद्रता से जल जाने तक, बाँध रखती है।

३—भारतांतर्गत राज्य नष्ट होने का एक प्रबल कारण भी यही रोटी-बंदी और तदुपरांत परदेशगमन-बंदी है। बाहर के देशों की तो बात ही जाने दीजिए, मनुस्मृति के मतानुसार तो "हिमवद विन्ध्य-योर्मध्ये" भारत के बाहर के कोकण और आन्ध्र आदि भारतीय प्रांतों में रहना भी ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्यों के लिए सख़्त मना है। उस दक्षिण प्रांत में केवल हो आने से प्रायश्चित्त करना पड़ता था। फिर हिंदुस्थान के बाहर, अरब में, मूर्त्ति-पूजकों का नाशक धर्म पैदा हुआ है—यह मालूम होते हुए भी समुद्रोल्लंघन करके आक्रमण से पहले ही इस आक्रमक शत्रु का नाश करने के लिए हमारी फ़ौजें बाहर कैसे

आएंगी ? मुहम्मद क़ासिम के समुद्र पार कर आने के बाद दाहिर उसके साथ लड़ सकता है; पर मुहम्मद के आने से पहले दाहिर ने ही क्यों नहीं अरब पर आक्रमण कर दिया ? मुहम्मद गौरी दस बार पंजाब में आया पर पृथ्वीराज एक बार भी काबुल न जा सका। मुख्य कारण यही था कि हिंदुओं में शक्ति होते हुए भी उनको अपने हाथों डाली हुई "अटक" की बेड़ी रोक रखती थी। पेशवाओं के उन्नति-काल में भी दूसरे "द्वीप" वासी पूना के "शनिवार बाड़ा" के चूहों तक की गिनती करके ताक रहे थे; परंतु उस समय के साढ़े तीन अकलमंदों में से भी किसी ने यह प्रत्यक्ष नहीं देखा था कि उनका इंग्लैण्ड देश कहाँ है। यदि यूरोप भर में हमारे वकील पुर्तगाल, फ्रांस, जर्मनी, रूस और इंग्लैण्ड की राजधानियों में रक्खे जाते, हज़ारों व्यापारी, विद्यार्थी, सैनिक और जहाज़ यूरोप के सागरों और नगरों में बिखरे हुए होते, तो हम भी यूरोप के आपस के यादवी संधि-विग्रह के बल पर वैसा ही लाभ उठाते जैसा कि उन्हों ने हमारी यादवी से उठाया है। परंतु हमारे देश में सारा यूरोप ऊधम मचा रहा था तो भी हम में से एक भी माई का लाल यूरोप का दर्शन करने नहीं गया। अधिक क्या, पेशवाओं को कोई लण्डन भेंट कर देता—जैसे बम्बई अंगरेज़ों को दी गई थी तो भी पेशवा उसको स्वीकार न कर सकते क्योंकि लण्डन का राज्य करने के लिये जो कोई हिंदू जाता वही ईसाई बन जाता। क्या लण्डन में हिंदू साम्राज्य स्थापित हो जाता ? अमरीका उस समय वीरान मुल्क था। लोग जाकर केवल उसको जीत लेते। फिर पेशवा की कोई सेना उधर जाती तो क्या हम उधर कोई उपनिवेश स्थापित न करते ? परंतु खाने-पीने से जाति चली जाती है न ? परदेश में जाने से हमारी जाति जाती है पर परायों को स्वदेश में आने देने से—स्वदेश को परदेश बना देने से—वह जाति नहीं जाती। अंगरेजों के हाथ पर राज्य का

उदक छोड़कर राज्य को डुबो दिया तो भी श्री राघोबाजी ब्राह्मण के ब्राह्मण बने रहे; परंतु यदि वह इंग्लेण्ड में जाकर उनका राज्य छीन लेते तो उनका ब्राह्मणत्व तत्काल नष्ट हो जाता। उनको क्रिश्चियन समझ कर बहिष्कृत कर दिया जाता। जाति जाने के भय से ही हम परदेश में (मक्का या काबुल में) झंडा लहराते हुए—शक्ति के होते हुए भी—नहीं गये। लेकिन महमूद ने हमारे देश में आकर मथुरा को मक्का और काशी को काबुल बना दिया। उसका क्या हुआ? दुनियाँ का अन्न-जल खाने-पीने से रोटी-बंदी टूटती है, जाति जाती है; परंतु दुनियाँ ने हमारी सारी नदियां और अन्न के भंडार जूठे करके, खा पीकर, बरबाद कर दिये, तो भी हमारी जाति नष्ट नहीं होती। भ्रष्टीकरण का मुख्य कारण भी यही रोटी-बंदी है। विधर्मी ने एक बारां चावल का का एक ग्रास मुंह में घुसेड़ दिया कि हम जन्म-भ्रष्ट होगये—नहीं, हम वंशपरंपरा सहित भ्रष्ट हो गये! कुएं में गो-माँस का टुकड़ा गिर पड़ा—सारा गांव का गाँव वंशपरंपरा-भ्रष्ट हो गया! आज जो पाँच छ: करोड़ हिंदू भ्रष्ट होकर मुसलमान, और लगभग एक करोड़ हिंदू क्रिश्चियन बने हुए दिखाई देते हैं, इन में निन्यांनवे प्रति सैकड़ा लोग केवल इस उलटी समझ से भ्रष्ट हो गये हैं कि 'खाने से जाति चली जाती है और धर्म डूब जाता है'। हिंदुस्थान के सिवा और किसी राष्ट्र ने ऐसी बेवकूफ़ी नहीं दिखाई। रोटी-बंदी! इन चार अक्षरों के जबड़े में चार करोड़ हिंदुओं का बलिदान हुआ तो भी वह भरा नहीं। फटा भी नहीं। इस एक वाक्य में किता भयंकर अर्थ भरा हुआ है।

शुद्धिकरण के मार्ग में मुख्य रुकावट यही रोटी-बंदी है। रोटी-बंदी से ही शुद्धि-बंदी का जन्म हुआ है। इसी कारण यद्यपि आज हमने उस शुद्धि-बंदी को तोड़ना चाहा तो था परंतु रोटी-बंदी को बिना तोड़े वह टूट नहीं सकी। आज मुसलमान और क्रिश्चियन बने हुए लगभग एक

करोड़ लोग बसई, गुजरात, राजस्थान, पंजाब, बिहार, बंगाल आदि प्रांतों में शुद्ध होने के लिए तैयार हैं, परंतु उनका प्रश्न इतना ही है कि क्या हमारी पुरानी जाति हमारे हाथ का खाएगी और पीएगी ? क्या हमें तुम अपने समाज में आत्मसात् करोगे ? बेटी-बंदी का प्रश्न तो जीवन में दो एक बार ही विघ्न उपस्थित करेगा, परंतु रोटी-बंदी का प्रश्न तो पद-पद पर रुकावट पैदा करता है। गत दस पांच वर्षों में गोमांतक और राज्यस्थान में हजारों लोग शुद्ध होकर हिंदू बन गये हैं; परंतु जिस मूर्ख समझ से वे भ्रष्ट हो गये थे उनकी वही समझ हिंदू-धर्म में आते ही यदि फिर उनके सिर पर लाद दी गई तो दस-बीस वर्षों में ही पादरी लोग कुएं में पांव डाल कर वह शुद्ध हुए गाँव के गांव रात भर में ही भ्रष्ट कर सकेंगे। इसलिए रत्नागिरी हिंदूसभा ने शुद्धि-संस्कार में अन्तिम विधि यह रक्खी है कि वह शुद्ध हुए लोग यहाँ चलाए हुए हिंदू-उपाहार-गृहों में चमार के साथ ही नहीं, मुसलमान और ईसाइयों के साथ भी खूब दबाकर भरपेट खाएं पीएं। खाया हुआ हज़म हुआ कि वह पक्का हिन्दू हो गया। इस अखिल हिन्दू-उपाहार-गृह में ब्राह्मण से लेकर चंडाल तक सैकड़ों हिन्दुओं को सहभोज करते देखकर वहाँ अपना मतलब सिद्ध करने के लिये आने वाले पादरी अपना भ्रष्ट करने का पेशा नष्ट हुआ समझ कर, अपना-सा मुंह लेकर लौट जाते हैं। सचमुच यदि हम हिन्दू खाने से जाति जाने के इस मूर्खता-पूर्ण ढकोसले को छोड़ दें और शुद्ध हुओं से हिल-मिल कर कम से कम रोटी-व्यवहार करने लग जाएं तो आगामी दस वर्षों के अन्दर दस लाख अहिन्दुओं को आसानी से शुद्ध किया जा सकता है। वे पक्के हिन्दू बनेंगे। मुल्ला मिशनरी के हाथ का पानी पीकर हिन्दू का भ्रष्ट होना बन्द हो गया कि समझ लो मुल्ला-मिशनरी के

मूँह का पानी भी सूख गया। परन्तु जबतक हम इस मूर्ख समझ को छोड़ नहीं देते तब तक शुद्धि आन्दोलन कभी आगे क़दम नहीं बढ़ा सकता और बढ़ाए हुए क़दम को स्थिर भी नहीं रख सकता।

४—हिन्दुओं के सामूहिक व्यवहार और प्रगति में रुकावट भी यही रोटी-बंदी है। प्रत्येक को इस बात का अनुभव है कि रोटी-बंदी की बेड़ी के कारण से प्रवास, सभा, कार्य, कारखाने और सामूहिक हलचल में कितनी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। विशेषतः उस समय जब इस बेड़ी से मुक्त क्रिश्चियन, मुसलमान, बौद्ध प्रभृति राष्ट्रों की हल-चल का मुकाबला करने का समय आता है। केवल राष्ट्रसभा की बात ही लीजिये। प्रथा के कारण वहाँ रोटी-बंदी का पालन करना चाहें तो कितनी पंक्तियों को, कितनी काट कोन साध कर, कितनी जातियों के परोसने वालों से भोजन परोसवाना पड़ेगा। एक ब्राह्मण जाति की छप्पन रोटी-बंद जातियां वहाँ आयेंगी। ब्राह्मण लिंगायत के हाथ का नहीं खायेगा। लिंगायत ब्राह्मण के हाथ का नहीं खायेगा। अछूतों में भी असंख्य जातियाँ—पाणी-महार, बेके-महार, दामोकी-चमार, घाटी चमार, मोची, मेहतर, धेड़। इन में भी फिर बंगाली, पंजाबी, मद्रासी, मेघ, मोची, महार आदि भिन्न भिन्न रोटी-बंद हैं। राष्ट्र सभा में आज यदि सारा समय इन रोटी-बंद पंक्तियों को बिनने और उठाने में नष्ट नहीं होता तो वह इस लिये कि राष्ट्र सभा रोटी-बंदी को गर्दनियाँ देकर कम से कम अपने पण्डाल से बाहर निकाल देती है।

खैर, इस रोटी-बंदी की मूर्खता के कारण होने वाली जो प्रमुख हानियाँ ऊपर बतलाई गई हैं उनके विरुद्ध उससे कोई एक भी लाभ है? फिर उसका पालन भी कैसे किया जाता है? पंक्ति में हाथ भर के फ़ासले पर ब्राह्मण बैठता है, थोड़े तिरछे कोने में मराठा, और एक

कोने में वाणी, दर्जी, आदि। परन्तु परस्पर उतना ही अंतर रख कर वे सब एक ही पंक्ति में बैठे नहीं कि उनकी जातियाँ रसातल में पहुँची नहीं। अर्थात् जाति रक्तबीज का प्रश्न न हो कर एक भूमिति का प्रश्न बन गया है। कितने कोन साध सकते हैं ? परंतु राष्ट्रसभा जैसे प्रसंग पर ज्यामिट्री की क्या चलेगी !

ऊपर किये हुए संक्षिप्त परंतु साधार विवेचन से यह साफ़ दिखाई देता है कि इस रोटी-बंदी से हिन्दूस्थान की अपरिमित हानि हुई है। हमें इस बेड़ी को फ़ौरन तोड़ ही देना चाहिये। चावल खाने से जाति कैसे जायेगी ? धर्म कैसे डूब जायगा ? जाति दम्पतियों के रक्तबीज से जन्म लेती है, बर्तन के उबलते हुए चावल के बुद्बुद् से नहीं। धर्म का स्थान हृदय है, पेट नहीं। इस लिये यह मज़हबी पागलपन छोड़कर वैद्यक शास्त्र की दृष्टि से किसी भी उचित स्थान में और किसी भी मनुष्य के साथ जो जो जी चाहे और हज़म हो जाए वह आनंद-पूर्वक खाना चाहिये। हिंदू के साथ भोजन करने से मुसलमान भ्रष्ट नहीं होते। हिन्दू का अन्न खाकर मुसलमान का मुसलमान और ईसाई का ईसाई बना रह सकता है; फिर हिंदू उनका खाते ही क्यों भ्रष्ट हो जाए? इस रोटी-बंदी की मूर्खता से सारा संसार हिन्दुओं का अन्न खा गया। अब हिन्दुओं को भी संसार के अन्न पर हाथ साफ़ करना चाहिये और अपने घर के अन्न को जहाँ तक सम्भव हो सके, बचाना चाहिये। यदि संसार के संग्राम में हिंदुओं को जीना है तो उन्हें जो चीज़ भुला देनी पड़ेगी वह है रोटी-बंदी और जो सीखनी पड़ेगी वह है रोटी-लूट !!

हमारी देवभाषा—संस्कृत
हमारी राष्ट्रभाषा—हिन्दी

"संस्कृतनिष्ठ हिंदी जो संस्कृत से बनायी गयी है और जिसका पोषण संस्कृत भाषा से हो, वह हिंदी हमारी राष्ट्रभाषा होगी। संस्कृत भाषा संसार की समस्त प्राचीन भाषाओं में सब से अधिक संस्कृत और सब से अधिक सम्पन्न होने के अतिरिक्त हम हिंदुओं के लिए सब से अधिक पवित्र भी है। हमारे धर्मग्रंथ, इतिहास, तत्वज्ञान और संस्कृति, संस्कृत भाषा से इतनी अधिक परस्पर मिली हुई है और इसके अंतर्भूत है कि यही हमारी हिंदू जाति का वास्तविक मस्तिष्क है। हमारी अधिकांश मातृ-भाषाओं की यह माता है, इस ने उन्हें अपने वक्ष का दूध पिलाया है। आज हिंदुओं की समस्त भाषाएं जो या तो संस्कृत से ही निकली हैं या उसमें दूसरी भाषा मिला कर बनायी गयी हैं, वे सब तभी उन्नत और संवृद्ध हो सकती हैं जब वे संस्कृत-भाषा से पोषित की जायें। इसलिये प्रत्येक हिंदू युवक के प्राचीन भाषा के पाठ्यक्रम में संस्कृत भाषा आवश्यक रूप से रहनी चाहिये। संस्कृत हमारी देवभाषा है और हिंदी हमारी राष्ट्रभाषा।

हिंदी को राष्ट्रीय भाषा स्वीकार करने में अन्य प्रांतों की भाषा के सम्बन्ध में कोई अपमान की भावना या ईर्षालू भावना नहीं है। हमें अपनी प्रांतीय भाषाओं से भी उतना ही अधिक प्रेम है जितना कि हिंदी से। ये सब भाषाएं अपने अपने क्षेत्र में उन्नत होती रहेंगी। वास्तव में कुछ प्रांतीय भाषाएं हिंदी भाषा की अपेक्षा साहित्य में अधिक उन्नत और अधिक सम्पन्न हैं परंतु फिर भी हिंदी अखिल

हिंदुत्व की राष्ट्रभाषा होने के लिये सब प्रकार से सर्वश्रेष्ठ है। यह बात भी ध्यान में रखने की है कि हिंदी को राष्ट्रभाषा-व्यवस्था के लिये नहीं बनाया गया है। वास्तविक बात यह है कि मुसलमान और अंग्रेजों के आने के बहुत पहले से ही हिंदी ने समस्त हिंदुस्थान में राष्ट्रीय भाषा का स्थान ग्रहण कर लिया था। हिंदू तीर्थ यात्री, व्यापारी और यात्रा करनेवाले देश के एक छोर से दूसरे छोर तक घूमते थे—बंगाल से सिंधु तक और काश्मीर से लेकर रामेश्वर तक वे जाया करते थे और वे अपना मनोगत भाव प्रत्येक स्थान में हिंदी में ही व्यक्त कर अपना काम चलाते थे। जिस भांति संसार के बुद्धिमान हिंदुओं की भाषा संस्कृत थी, उसी भांति कम से कम एक हज़ार वर्षों से साधारण हिंदुओं की राष्ट्रीय भाषा हिंदी रही है। इसके अतिरिक्त आज भी हम यह देखते हैं कि भारत में जितने लोग हिंदी समझ सकते हैं या जितने लोग हिंदी को मातृभाषा के रूप में बोलते हैं, उतनी अन्य किसी भाषा को न तो समझते हैं और न बोलते हैं। इसलिये प्रत्येक हिंदू विद्यार्थी के लिए यह आवश्यक कर दिया जाये कि सेकेण्डरी स्कूलों में प्रत्येक विद्यार्थी को अपनी प्रांतीय भाषा की शिक्षा के साथ साथ हिंदी भी आवश्यक रूप से पढ़ाई जाये।

हिंदी से हमारा अभिप्राय शुद्ध 'संस्कृतनिष्ठ' हिंदी से है; उदाहरण के लिये महर्षि दयानंद सरस्वती ने जैसी हिंदी अपने सत्यार्थप्रकाश में लिखी है। सत्यार्थ-प्रकाश की हिंदी कितनी सरल है, उस में अनावश्यक रूप से एक भी विदेशी भाषा का शब्द नहीं डाला गया और साथ ही उस में अपनी भावना को कितने सुन्दर रूप से स्पष्ट किया गया है। यहां यह बात बता देना ठीक होगा कि स्वामी दयानंद सरस्वती ऐसे पहले हिंदू नेता हुए हैं जिन्होंने पहले-पहल यह बात कही थी कि अखिल हिंदुत्व की राष्ट्र-भाषा हिंदी होनी चाहिये।

हमारी इस 'संस्कृतनिष्ठ' हिंदी का सम्बन्ध उस हिंदुस्थानी से कुछ भी नहीं है जो वर्धा की योजना के अनुसार ज़बरदस्ती दूसरी भाषा के शब्द ठूंस कर बनायी गयी है। यह नीति भाषा को दलदल में फँसाने से कुछ भी कम नहीं और हमें इस आंदोलन को दृढ़तापूर्वक दबा देना चाहिये। इतना ही नहीं, हमारा यह भी अनिवार्य कर्तव्य है कि हम अपनी प्रांतीय भाषाओं में से और बोलचाल की भाषा में से भी वे सब विदेशी शब्द बीन डालें जो उनमें अंग्रेजी अथवा अरबी के हैं। हम अंग्रेजी भाषा के विरोधी नहीं हैं, इस के विपरीत हमारा आग्रह है कि अंग्रेजी भाषा नितांत आवश्यक है और विश्व-साहित्य में प्रवेश करने के लिए यह एक पासपोर्ट या साधन है। परंतु हम अपनी देशी भाषाओं में विदेशी भाषाओं के बढ़ते हुए प्रवाह को बिना आवश्यकता और बिना रोकटोक के नहीं होने देंगे। इस के लिए हमें अपने बंगाली बन्धुओं को विशेष रूप से बधाई देना चाहिये कि उन्होंने अपनी भाषा को अनावश्यक विदेशी शब्दों से बिलकुल स्वच्छ रखा है। हमारी अन्य प्रान्त की भाषाओं के सम्बन्ध में यह बात नहीं कही जा सकती।

हिंदुडम की राष्ट्रीय लिपि नागरी होगी :—हमारी संस्कृत की वर्ण माला ध्वनि की दृष्टि से संसार की समस्त वर्ण-मालाओं में सबसे अधिक परिपूर्ण है और हमारी भारतीय लिपिओं ने इस का अनुकरण पहले ही से कर लिया है। नागरी लिपि भी उसी क्रम में है। हिंदी की भांति नागरी लिपि भी समस्त भारत में गत दो हज़ार वर्षों से साहित्यिक लोगों में प्रचलित है। इसे "शास्त्री लिपि" के नाम से भी पुकारते हैं क्योंकि इस में हमारे धर्म-शास्त्र लिखे गये हैं। थोड़ा सा इधर उधर फेर फार करने से यह लिपि छपाई इत्यादि के लिए रोमन लिपि के समान सरल हो सकती है। इस प्रकार का

लिपि-सुधार का आँदोलन महाराष्ट्र में गत ४० वर्षों से प्रचलित है। इसे श्री वैद्य तथा अन्य लोगों ने प्रचलित किया था। बाद में मेरी अध्यक्षता में यह संघटित रूप से चला और क्रियात्मक रूप से इस में हमें बड़ी सफलता प्राप्त हुई। नागरी लिपि को राष्ट्रीय लिपि बनाने के लिये मैं समस्त प्रान्तों के हिन्दू पत्रों से ज़ोरदार सिफ़ारिश करता हूँ कि वे अपने पत्रों में कम से कम एक या दो कालम अपनी प्रान्तीय भाषा के नागरी लिपि में प्रकाशित किया करें। यह बात सब लोग जानते हैं कि यदि गुजराती, बंगला भाषा भी नागरी लिपि में प्रकाशित हो तो उसे अन्य प्रान्त के लोग भी समझ सकते हैं। समस्त हिन्दुस्थान में एक भाषा तुरंत कर देना अक्रियात्मक और मूर्खतापूर्ण है। परन्तु समस्त हिन्दूडम में नागरी लिपि कर देना बहुत सरल और संभव है। फिर भी यह बात तो ध्यान में रखनी ही होगी, कि विभिन्न प्रान्तों में हिन्दुओं के धर्म ग्रन्थ विभिन्न हिन्दू लिपियों में लिखे गये हैं और प्रचलित हैं, इसलिये इन लिपियों का अपना भविष्य है और नागरी लिपि के साथ साथ इन की उन्नति भी होनी चाहिये। इस समय तुरंत आवश्यकता इस बात की है कि समस्त हिन्दू विद्यार्थियों को हिन्दी भाषा के साथ नागरी लिपि की अनिवार्य्य रूप से शिक्षा दी जाया करे।

यहाँ आप को यह बताना भी बड़ा रोचक होगा कि कांग्रेस के पूर्व दो प्रेसिडेंटों ने राष्ट्र भाषा और राष्ट्र लिपि की समस्या को किस प्रकार हल करने का यत्न किया था। मौलाना अबुलकलाम आज़ाद कहते हैं कि राष्ट्रीय भाषा हिन्दुस्थानी ऐसी हो जो उर्दू के समान हो; परन्तु पंडित जवाहरलाल नेहरू उनसे भी आगे बढ़ कर कहते हैं कि राष्ट्र भाषा अलीगढ़ स्कूल की या उस्मानिया युनिवर्सिटी की हो—वही २८ करोड़ हिन्दुओं के लिये भी सब से अधिक उपयुक्त होगी। देश गौरव श्री सुभाष बाबू अपने पूर्वाधिकारी पण्डित जवाहरलाल नेहरू से भी बुद्धि

मत्ता में बाज़ी ले गये हैं। वे कांग्रेस के सभापति पद से कहते हैं कि भारत के लिये सब से उपयुक्त राष्ट्र-लिपि रोमन लिपि होगी। इस प्रकार से कांग्रेस की विचार धारा राष्ट्रीय बातों का विचार करती है। यह कितनी क्रियात्मक हो सकती है, इसके सम्बन्ध में जितना थोड़ा कहा जाये उतना ही अच्छा है। आपके वसुमति, आनंद बाज़ार पत्रिका और समस्त बंगाली पत्र अब प्रतिदिन रोमन लिपि में प्रकाशित होंगे। इस नई लिपि में 'वंदेमातरम्' इस प्रकार लिखा जायेगा :—

"टोमारों प्रटिमा घडिबे मण्डिरे मण्डिरे"। और फिर गीता किस बढ़िया रूप में लिखी जायेगी—

"दर्म खेट्रे कुरु खेट्रे, शमवेटा युयुट्सवा"। बस इसी प्रकार समझ लीजिये। यह ठीक है कि मुस्तफा कमाल पाशा ने अरबिक लिपि को छापने के अयोग्य समझ कर उसके स्थान में रोमन लिपि स्वीकार की है। परंतु इस बात से हमारे उन भारतीय मुसलमानों को पाठ सीखना चाहिये जो भारत में उर्दू लिपि को [जो अरबी लिपि के ही समान है] हम हिन्दुओं पर यह कह कर ज़बरदस्ती ठोंकना चाहते हैं, कि यह लिपि आधुनिक रूप की है और इस का हिन्दुओं से कोई सम्बन्ध नहीं है? कमाल पाशा को इसलिये रोमन लिपि का आश्रय लेना पड़ा क्यों कि उन की अपनी लिपि इस से अच्छी नहीं थी। अण्डमान द्वीप में वहाँ के निवासी कौड़ियों का हार बना कर पहनते हैं—इसलिए क्या धन-कुबेरों को भी कौड़ियों का हार पहनना चाहिये। हम हिन्दुओं को तो युरोप और अरबिया के लोगों को भी नागरी लिपि हिन्दी भाषा स्वीकार करने के लिये कहना चाहिये। हमारा यह प्रस्ताव वे हठी और आशावादी लोग तो असंभवनीय नहीं समझ सकते जो उर्दू को राष्ट्र भाषा बनाने की कल्पना कर यह संभवनीय समझते हैं कि मरहटे उर्दू पढ़ेंगे और आर्य समाज के गुरुकुलों में वेदों को रोमन लिपि में पढ़ाया जायेगा!

राष्ट्र-भाषा हिन्दी का नया स्वरूप

जब से हिन्दी को राष्ट्र-भाषा बनाने तथा उसका प्रचार करने का कार्य आरम्भ किया गया है, तब से मुसलमान लोग इस बात के लिए सचेष्ट हैं कि हिन्दी को यह पद प्राप्त न हो। उन्होंने सदैव इस बात का प्रयत्न किया है कि सात करोड़ मुसलमानों की सुविधा के लिए २८ करोड़ हिन्दू जनता उर्दू को राष्ट्रभाषा स्वीकार कर ले। उर्दू हिन्दी से किसी प्रकार भी श्रेष्ठ नहीं कही जा सकती। उर्दू अपनी दरिद्रता का निवारण अरबी भाषा द्वारा करती है, परन्तु उर्दू के लिए अरबी इतनी सम्पन्न नहीं, जितनी सम्पन्न हिन्दी के लिए अनेक गुणों से अलंकृत संस्कृत भाषा है। हिंदी उर्दू की अपेक्षा अधिक सम्पन्न है। परन्तु क्या अल्पसंख्यक मुसलमानों को प्रिय होने के कारण ही उर्दू को राष्ट्र-भाषा के आसन पर बिठा दिया जाय? मुसलमानों की इस इच्छा को यदि बहुसंख्यक हिन्दू लोग नहीं स्वीकार करते तो वे इस बात के लिए भी प्रयत्नशील हैं कि भारत की कोई भी भाषा राष्ट्र-भाषा न होने पावे। वे मुसलमान लोग तो इस प्रकार का हठ भी प्रारम्भ से करते आ रहे हैं कि जिन प्रान्तों की भाषा हिन्दी है, वहां भी उसे हटा कर उर्दू का प्रचार किया जाय और नागरी लिपि में हाथ लगाना पाप समझा जाय। यही नहीं, हिन्दी नाम की कोई भी भाषा वे राष्ट्र-भाषा के रूप में स्वीकार करने को तैयार नहीं हैं। उनकी दृष्टि से तो राष्ट्र-भाषा का नाम उर्दू ही होना चाहिये।

हिंदू लोगों में एक समुदाय ऐसा है जो प्रत्येक बात का राष्ट्रीय स्वरूप देखने के लिए किसी न किसी मुसलमान की उपस्थिति

आवश्यक समझता है। यह उसकी भ्रमपूर्ण धारणा है। इस समुदाय को जब यह विदित हुआ कि मुसलमान लोग हिन्दी को राष्ट्र-भाषा और नागरी-लिपि को राष्ट्रीय लिपि बनाने के कट्टर विरोधी हैं, तब वह बेचैन हो गया। इस विचार के लोगों में, जिन्होंने हिन्दी को राष्ट्र-भाषा बनाने का प्रथम प्रयत्न किया है, महात्मा गांधी का प्रमुख स्थान है। परन्तु प्रत्येक राष्ट्रीय कार्य को बहुसंख्यक लोगों की दृष्टि से न विचार कर उपर्युक्त धारणा के अनुयायी होने के कारण मुसलमान लोग जिस बात के लिए हठ करते हैं, उसकी पूर्ति करना गांधी जी के लिए आवश्यक हो जाता है। हिंदी के प्रश्न में भी यही विचार काम कर रहा है।

जब दो पक्ष किसी समझौते का प्रयत्न करते हैं, तब परस्पर कुछ छोड़ने और कुछ लेने की बात उपस्थित हो जाती है। परन्तु राष्ट्र-भाषा के सम्बन्ध में मुसलमान लोग ऐसा समझौता करने को नहीं तैयार हैं। वे तो इसी शर्त पर समझौता कर सकते हैं कि उनकी भाषा को राष्ट्र-भाषा और उनकी लिपि को राष्ट्र-लिपि माना जाय। फिर भी महात्मा गांधी आदि ने हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन में समझौते का प्रस्ताव रख ही दिया। यह समझौता हिन्दुओं के लिए हितकर नहीं, कहा जा सकता। समझौता दोनों पक्षों को स्वीकार होगा या नहीं इसका खयाल न करते हुए हिन्दी-भाषा को विकृत बनाने का कार्य गांधीजी ने भी धूमधाम से प्रारम्भ कर दिया है।

राष्ट्रीय भाषा का प्रश्न प्रत्येक प्रान्त के लिये महत्त्वपूर्ण है। इसका अच्छा और बुरा परिणाम प्रत्येक प्रान्त की भाषा और हिन्दू संस्कृति को भोगना पड़ेगा। राष्ट्र-भाषा के प्रश्न को हल करने और मुसलमानों को संतुष्ट करने के लिए जो समझौता उपर्युक्त लोगों ने किया है, उसकी मुसलमानों ने निन्दा की है। फिर भी हिन्दी को तोड़ने-

मरोड़ने का कार्य तो प्रारम्भ कर ही दिया गया। जब लिपि का प्रश्न हल होता नहीं दिखाई दिया, तब यह कह दिया गया कि हिंदू लोग नागरी लिपि का और मुसलमान लोग अरबी लिपि का व्यवहार करें और दोनों को राष्ट्र-लिपि माना जाय। इस प्रकार समस्त राष्ट्रीय तथा सरकारी विज्ञप्तियां दोनों ही लिपियों में प्रकाशित की जायं। दूसरा प्रश्न हिन्दी और संस्कृत के सम्बन्ध का था। अतएव इस बात का प्रयत्न किया गया कि जहां तक हो हिन्दी भाषा मुसलमानों के लिए संस्कृत की दुर्गंध से रहित रखी जाय और हिन्दी भाषा में संस्कृत के समान अरबी, फारसी तथा उर्दू आदि के शब्दों की भरमार कर दी जाय। तीसरी बात यह की गई कि हिंदी का नाम हिंदुस्तानी रखा गया। इस समझौते से यह विदित होता है कि उदारता का अधिकांश श्रेय हिन्दी के सिर ही मढ़ा गया। परन्तु मुसलमानों ने ऐसी कोई उदारता नहीं प्रकट की। हिन्दी का विकृत रूप हो जाने पर यह आशा थी कि मुसलमान लोग हिन्दी या हिन्दुस्तानी को राष्ट्र-भाषा स्वीकार कर लेंगे, परन्तु यह भी न हुआ। उन्हें तो उर्दू नाम की भाषा राष्ट्र-भाषा के रूप में चाहिए।

हिंदी नाम से मुसलमानों को बहुत दिनों से घृणा है। इसलिए कुछ लोगों ने इसका नाम बदल कर समझौते का नाम हिन्दी याने हिन्दुस्तानी रखा। विचार करके देखिए, हिन्दी अर्थात् हिन्दुस्तानी या हिन्दी अथवा हिन्दुस्तानी नाम न रख कर हिन्दी याने हिन्दुस्तानी नाम रख कर कैसा विलक्षण प्रयोग किया गया है। परन्तु राष्ट्र-भाषा के प्रत्येक शब्द-संग्रह में एक उर्दू का शब्द आवश्यक है, इस नामकरण में भी 'याने' शब्द का व्यवहार किया गया है। किंवा, और, अर्थात् के स्थान पर 'याने' शब्द! ऐसे ही अन्य प्रयोगों से युक्त हिंदी मुग़ल-काल से चली आती है। हिन्दी को उर्दू लिपि में लिख कर

मुसलमानों ने स्वयं इसे हिन्दुस्तानी नाम प्रदान किया है। इसलिए हिन्दी याने हिन्दुस्तानी नाम को हिन्दू-मुस्लिम सहयोग का द्योतक समझ कर उपर्युक्त लोगों ने उसे यह नाम प्रदान किया और समझ लिया कि राष्ट्र-भाषा की समस्या हल हो गयी।

समझौता करने वालों ने यह ख़याल नहीं किया कि यह प्रश्न केवल नाम का नहीं है। उर्दू लिपि में छपी हुई हिन्दी को यद्यपि मुसलमान लोग हिन्दुस्तानी कहते आये हैं, किन्तु अब कट्टरतावश उनको यह नाम भी नहीं सह्य होता। मुसलमान लोगों का यह कहना है कि हिंदी के समान हिंदुस्तानी नाम में भी हिंदुत्व की दुर्गंध आती है। भाषा की तो बात ही क्या, वे तो इस देश को भी हिन्दुस्तान कहने में संकोच करने लगे हैं। उन्होंने यह स्पष्ट रूप से कह दिया है कि इस देश का हिन्दुस्तान नाम एकयता में घातक है और इसका नाम पाकस्तान रखा जाय। उर्दू में 'पाक' शब्द का अर्थ मुसलिम धर्म-अनुसार शुद्ध और 'नापाक' का अर्थ मुसलिम धर्म-निषिद्ध समझना चाहिए। जिस देश में मुसलमानों की महत्ता हो वह पाक है। इसी लिए उन्हें हिन्दुत्व का महत्व बतलाने वाले हिंदुस्तान शब्द को परिवर्तित करके मुसलिम महत्व का द्योतक पाकस्तान नाम रखना आवश्यक प्रतीत होता है। जिन प्रान्तों के लोग उर्दू-साहित्य से अपरिचित हैं, उन्हें यह विचार-धारा विडम्बनामयी या विपर्यस्त जान पड़ेगी। परन्तु बात बिलकुल सत्य है। मुसलमानों में आग़ाखाँ और डाक्टर इक़बाल ऐसे बड़े-बड़े लोगों से लेकर लाहौर तथा लखनऊ के अखबार बेचने वाले तक, हिंदुस्तान शब्द पर खुले शब्दों में आक्षेप और कटु आलोचनाएं करते हैं। वे चाहते हैं कि कम से कम पंजाब, काश्मीर, सिन्ध तथा सीमा-प्रान्त को हिन्दुस्तान से अलग कर के मुसलमानी महत्त्व का द्योतक पाकस्तान नाम अवश्य रख दिया जाय। इस मनोवृत्ति के

कारण मुसलमानों को हिन्दुस्तानी नाम भी उतना ही अरुचिकर है जितना हिन्दी। ऐसी दशा में एक राष्ट्र-भाषा बनाने के लिए हिन्दी याने हिन्दुस्तानी नाम गढ़ने से राष्ट्र-भाषा का प्रश्न हल नहीं होता। मुसलमान चाहते हैं कि हिंदुस्तानी नहीं, इसका नाम पाकस्तानी रखा जाय।

इसी प्रकार समझौते की दूसरी सुविधाएं भी, जो मुसलमानों के लिए निश्चित की गयी हैं, व्यर्थ हैं। इनसे तो केवल हिन्दी का स्वरूप ही विकृत हो सकता है। अब तो अरबी तथा फ़ारसी आदि विदेशी भाषाओं के शब्दों को हिन्दी में लाने का प्रयत्न किया जा रहा है। अतएव लखनऊ के बाज़ार में हिन्दू तथा मुसलमान, जिन हिन्दी, उर्दू, अरबी, फारसी, तुर्की और अङ्गरेज़ी आदि के शब्दों की खिचड़ी पकाते हैं, क्या वही भाषा राष्ट्र-भाषा मानी जाय ? किसी भी देश की राष्ट्र-भाषा वही हो सकती है जिसमें राष्ट्र के उच्च साहित्य का समावेश हो। भारत की राष्ट्र-भाषा ऐसी हो जिसमें भारत के उच्च विचार, तत्व-ज्ञान, काव्य, रसायन, वैद्यक, पदार्थ-विज्ञान और भूगर्भ-शास्त्र आदि विज्ञानों तथा राजकीय, सामाजिक और धार्मिक भावनाओं का प्रकटी-करण हो सके। उस भाषा का अत्यन्त सम्पन्न, प्रौढ़ तथा प्रगतिशील होना भी आवश्यक है। क्या उपर्युक्त महत्वपूर्ण विषयों और भावनाओं को व्यक्त करने की शक्ति इस बाज़ारू भाषा में हो सकती है ? रसायन, गणित, वैद्यक, ज्योतिष आदि विज्ञानों में प्रयुक्त हज़ारों पारिभाषिक शब्द क्या बाज़ारू बोली में मिल सकते हैं ? यदि यह सम्भव नहीं, तो इस राष्ट्रीय-भाषा तथा काव्य और तत्व-विज्ञान के लिए आवश्यक हज़ारों पारिभाषिक शब्द तथा प्रौढ़, कोमल और रुचिर गूढ़ संदर्भ को प्रकट करने वाले अर्थवाहक, ध्वनिमय शब्द किस रत्नाकर से निकाले जायंगे ? क्या अरबी से निकाले जायंगे ? वह तो स्वयं अत्यन्त दरिद्र

है। वह इतनी दरिद्र है कि जब कमाल-पाशा ने योरप के अर्वाचीन विज्ञान को इस भाषा में लाने का प्रयत्न किया, तब उसे निराश होना पड़ा और उसने यह अनुभव किया कि यदि प्रगतिशील साहित्य की सृष्टि करना चाहते हैं तो उन्हें अरबी-भाषा का मोह छोड़ने के अतिरिक्त अन्य कोई साधन नहीं है। उसने अरबी भाषा को तुर्किस्तान से निकाल बाहर किया। तुर्किस्तान मुसलिम संस्कृति का केन्द्र है। अरबी मुसलमानों की धार्मिक भाषा है, परन्तु तुर्कों ने उसे अपनी प्रगति के विरुद्ध पाया। उन्होंने उसका विरोध किया। फिर वही विदेशी, शब्द-दारिद्र-युक्त अरबी भाषा भारत के स्वाभिमान और उसकी प्रगति में कैसे सहायक हो सकती है? हिन्दी को शब्द-समूह सुसम्पन्न संस्कृत-भाषा से ही मिल सकता है। संस्कृत उसकी प्रकृति के अनुकूल है और उसी से उसकी उत्पत्ति हुई है। शब्द-सृष्टि करने में अरबी संस्कृत का मुक़ाबला नहीं कर सकती। संस्कृत-भाषा के शब्द-रत्नाकर तथा साहित्य-क्षीर-सागर को छोड़ कर अरबी की मरुभूमि में पानी के लिए भटकने की क्या आवश्यकता? हिन्दी में अरबी भाषा के शब्दों का समावेश होने पर मुसलमान लोग इसे राष्ट्र-भाषा मान लेंगे, इसके लिये किसी भी प्रतिष्ठित मुसलिम संस्था या व्यक्ति का मत नहीं उपस्थित किया जाता। धारा-सभाओं में मुसलमानों को जिस प्रकार साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व दिया गया है, उसी प्रकार क्या उन्हें भाषा में भी साम्प्रदायिक शब्द-प्रतिनिधित्व दिया जायगा? यदि यह बात ठीक है तो इसका अनुपात क्या होगा? कुछ विदेशी शब्दों का हिन्दी में समावेश करने पर काम नहीं चल सकता। मुसलमानों को संतोष तभी होगा जब अरबी और फारसी के हज़ारों शब्द हिन्दी में लिये जायंगे! इस संख्या से अरबी या फ़ारसी के शब्दों का समावेश करने का तात्पर्य होगा हिन्दी को उर्दू में परिवर्तित कर देना।

मुसलमान लोग भोले नहीं हैं। उनको किसी प्रकार का भी समझौता मान्य नहीं। वे तो यह धमकी दे रहे हैं कि उर्दू को ही राष्ट्र-भाषा बनाया जाय।

जिस उर्दू भाषा को मुसलमान लोग राष्ट्र-भाषा बनाने का साहस कर रहे हैं, वह उर्दू भाषा किस प्रकार की है, इसके कुछ उदाहरण यदि पाठकों के सामने रखे जायं तो उन्हें विदित होगा कि उर्दू को राष्ट्र-भाषा बनाने का विरोध बहुसंख्यक हिंदुओं को क्यों करना चाहिए। प्रचलित उर्दू के साधारण लेखों से नीचे लिखे उद्धरण दिये जाते हैं—

"ग़ालिब की शायरी में निहायत जवानी भी जगह-जगह भरी है। मज़ामीन भी उसने नये शामिल किये हैं, जिसे वह मसायले तसव्वुफ कहता है।"

"इत्तिला दी जाती है कि जो लोग सायलाने मज़कूर की ज़ात या जायदाद के ख़िलाफ़ मुताल्लिक दावे रखते हों वे इस इश्तिहार की तारीख से हाकिम के आगे तहरीरी अर्ज़ी पेश करें। ऐसा न करने पर सायले मज़कूर जुमला अग़राज़ व मोरकाजात के लिए जेरद का मज़कूर बाजाब्ता बेबाक मुतसव्विर होगा।"

अब उर्दू कविता का उदाहरण पढ़िए—

"परतवे खुर से है शबनम को फना की तालीम।
हम भी हैं एक इनायत की नज़र होने तक॥
फिर दिल तवाफ कूये मलामत को जाय है।
पिंदार का सनमकदा वीरां किये हुए है॥"

उर्दू भाषा का यह वास्तविक स्वरूप बंगाल, बिहार, उड़ीसा और महाराष्ट्र से लेकर रामेश्वर तक के करोड़ों हिन्दुओं के लिए ही

नहीं, लाखों मुसलमानों की भी समझ में नहीं आ सकता। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि बहुसंख्यक हिंदुओं के लिए यह भाषा बिलकुल ही अनुपयुक्त और अपरिचित है। उर्दू-भाषा के उपर्युक्त अवतरण हिंदू-जनता के लिए अत्यन्त असह्य हैं। फिर इनका उर्दू लिपि में लिखा जाना तो किसी प्रकार भी समझने योग्य नहीं कहा जा सकता।

अब एक छोटा उदाहरण दोनों भाषाओं के प्रचलित स्वरूपों से दिया जाता है—

"अगर बर तकदीर कोई सही मोशरिक मेरा पैदा होकर इस्तेहकाक जाहिर करे या मुनमिकर कब्जा वाकई न दे या किसी किफालत मवावजा की वजह से कब्जे, मर्तहनान भी सूफ में ये खलल वाके हो तो मूर्तहिन को अख्तियार होगा कि जुज या कुल जरे रहन मय सूद तारीखे तहरीर वसीका हजा से जायदादे मजकूराबाला व दीगर जायदाद व जात मुनमिकर से वसूल कर ले और शर्तें इनफिकाक यह है के जब जरे रहन अदा कर दूंगा तो शै मराहून इनफिफाक करा लूंगा।"

अब हिंदी का स्वरूप देखिए—

"समस्त धन उक्त अधिग्रहीता (मुर्तहिन) से प्राप्त कर लिया, अब कुछ शेष न रहा। आज से उसका स्वामित्व भूमि पर करा दिया। आज से वह अपने आप को उक्त भूमि का स्वामी समझे। जब कभी जेठ मास में बन्धक-धन (कर) चुका देंगे तो भूमि को मुक्त करा लेंगे। तब तक अधिग्रहीता को अधिकार होगा कि वह स्वयं भूमि जोते। उक्त भूमि से वृक्षों की लकड़ी लेता रहे। जो आर्थिक हानि उसको उठानी पड़े उसको हमसे तथा हमारी समस्त चल-अचल सम्पत्ति से प्राप्त कर ले।"

एक ही प्रकरण पर लिखे गये ऊपर्युक्त दोनों उद्धरणों से यह अनुभव किया जा सकता है कि कौन भाषा सरल और अधिक बोधगम्य है। महाराष्ट्र-गुजरात मद्रास में मुसलमान भी ऐसी उर्दू भाषा समझेंगे नहीं। हिन्दुस्तान की राष्ट्र-भाषा निश्चित करते समय यदि इस बात का ध्यान रखा जाय कि वह सब के लिए सरल हो तो हिंदी ही उस पद की अधिकारिणी हो सकती है। सुविधा की दृष्टि से उर्दू कितनी उपयोगी और अनुपयोगी है, इस संबंध में यहाँ विशेष लिखने की आवश्यकता नहीं। किसी प्रान्तीय भाषा में जितना सुन्दर साहित्य हो सकता है, वह उसमें है और वह मुसलिम लोगों की धार्मिक तथा जातीय भाषा है। दूसरी प्रान्तीय भाषाओं की भांति वह भी उन्नति करती रहे। परन्तु यहाँ प्रश्न तो भारत की राष्ट्र-भाषा का है। इसके लिए उर्दू सर्वथा अयोग्य, अराष्ट्रीय, अप्रगतिशील और जन्म-जात दरिद्र है। कारण, उसकी मुख्य आधार अरबी भाषा संस्कृत भाषा से किसी प्रकार भी समता नहीं कर सकती। इसी प्रकार उर्दू लिपि भी नागरी-लिपि की तुलना में सीखने, पढ़ने तथा छापने में अत्यन्त ही कठिन और अवैज्ञानिक है।

हिन्दी भाषा और नागरी-लिपि का मुसलमान लोग इसलिए स्वागत नहीं कर सकते कि दोनों हिन्दू संस्कृति से संबंध रखती हैं। इसीलिए मुसलमानी संस्कृति से संबंध रखनेवाली अरबी से प्रभावित उर्दू भाषा तथा अरबी-लिपि मुसलमान लोग छोड़ने को नहीं तैयार हैं। वास्तव में प्रश्न दो भाषाओं का नहीं, वरन् दो संस्कृतियों के संघर्ष का है। हम इस बात को समझ लें तो मुसलमानों का मत परिवर्तन करने की चेष्टा में जो समय बरबाद किया जा रहा है, उसकी बचत हो सकती है। मुसलमान पारस्परिक व्यवहार में उर्दू का उपयोग करें, इस संबंध में हमें कोई विरोध नहीं, परन्तु उनका यह दावा ठीक नहीं

कि उर्दू भाषा तथा अरबी-लिपि हिन्दू लोगों पर जबरदस्ती लादी जाय और उर्दू राष्ट्र-भाषा मानी जाय।

अब सीमा-प्रान्त की बात लीजिए। इस प्रान्त में मुसलमान लोग अधिक संख्या में हैं। अपने हाथ में सत्ता आते ही उन्होंने पाठशालाओं से हिंदी तथा गुरुमुखी का बहिष्कार कर दिया। सिक्खों तथा हिन्दुओं के लड़कों को उर्दू-भाषा सीखना अनिवार्य कर दिया गया। सरकारी कार्य भी उर्दू-भाषा में प्रारम्भ किये गये। सीमा-प्रान्त में मुसलमानों की संख्या अधिक है, इसलिए वहाँ की राष्ट्र-भाषा उर्दू हो सकती है। अतएव कांग्रेस ने इसका विरोध राष्ट्रीय दृष्टि से नहीं किया। परन्तु निज़ाम राज्य में बहुसंख्यक हिन्दुओं की आबादी होते हुए भी वहाँ उर्दू का प्रभुत्व है, फिर कांग्रेस ने इसका कभी विरोध क्यों नहीं किया? जब नागपुर के मराठीमंडल ने निज़ाम महोदय की इस नीति के विरुद्ध प्रस्ताव भेजा तब उपर्युक्त-विचार के लोगों ने उस प्रस्ताव को ही दबा दिया। काश्मीर में मुसलमान अधिक हैं, इसलिए गांधी जी ने कहा कि वहाँ के हिन्दू राजा को राज्य छोड़ देना चाहिए। परन्तु इस प्रकार की नीति के अनुयायी लोगों ने यह साहस नहीं किया कि वे निज़ाम और भूपाल के नवाबों को भी इसी लिए राज्य छोड़ने की सलाह देते क्यों कि इन स्थानों में हिन्दू अधिक हैं।

हिंदी का विरोध करने वाले प्रस्ताव पर सीमा-प्रान्त की धारा-सभा के एक हिन्दू सदस्य ने मुसलमानों से कहा था—

"इस प्रान्त में आज मुसलमान लोग अधिक हैं, इसलिए उर्दू ही राष्ट्र-भाषा होनी चाहिए। हिंदू लड़कों को भी उर्दू सीखना ही चाहिए। अतएव जिन प्रान्तों में हिंदू अधिक संख्या में हैं, वहाँ पर भी उर्दू-भाषा का निषेध कर के मुसलमान लड़कों को हिन्दी पढ़ना क्यों न अनिवार्य कर दिया जाय?" इस हिन्दू सदस्य के कथन पर

मुसलिम नेता ने यह उत्तर दिया था—"जिन प्रान्तों में हिन्दू अधिक संख्या में हैं; उन प्रान्तों से उर्दू का निषेध करने की हिंदुओं में शक्ति नहीं; हिन्दी का विरोध करने का मुसलमानों में सामर्थ्य है।" प्रत्येक हिंदू को चाहिए कि मुसलिम नेता के इस उत्तर को अपने हृदय में अङ्कित कर ले। इस नेता का कथन कटु अवश्य है, परन्तु उसमें सत्यता है और इसका प्रमाण भी शीघ्र ही मिल गया। बिहार में ८० प्रतिशत हिन्दू हैं, परन्तु मुसलमान लोगों ने सरकारी कामकाज उर्दू-भाषा और अरबी लिपि में करने का प्रस्ताव उपस्थित किया। मुसलमान लोग अप्रसन्न होंगे, इस भय से काँग्रेसी हिंदुओं ने भी प्रस्ताव का विरोध नहीं किया। बंगाल में भी यही परिस्थिति हो रही है।

भाषा-संशोधन के संबंध में कुछ लोगों का कथन है कि मुसलिम जनता ने उर्दू का आन्दोलन प्रारम्भ कर के उचित नहीं किया, बंगाल में तो समस्त मुसलिम जनता बंगला-भाषा को ही अपनी मातृ-भाषा जानती है। ऐसे भोले हिंदू लोगों को यह पता नहीं कि खिलाफत आन्दोलन के समय से बंगाल के बहुसंख्यक मुसलमानों की मातृभाषा उर्दू करने के लिए भीषण प्रयत्न हो रहा है। ढाका-विश्वविद्यालय में मुसलमानों ने यह प्रश्न उपस्थित किया था कि बंगला-पाठ्यग्रन्थों में उर्दु के शब्द ही अधिक रखे जायं। ऐसी पुस्तकें प्रकाशित भी हो रहीं हैं जिनमें 'इतिहास' के स्थान पर 'तवारीख' तथा 'विकास' के स्थान पर 'तरक्की' ऐसे शब्दों का प्रयोग किया जाता है। उनमें देश, राष्ट्र और पुष्कल ऐसे सरल शब्दों के स्थान पर मुल्क, क़ौम और निहायत शब्दों का प्रयोग किया गया है। शब्द ही नहीं, अर्थ भी विवाद-ग्रस्त हो गया है। रवीन्द्रनाथ के साहित्य पर मुसलमानों ने आक्षेप किया है। उनका कहना है कि उपमाएं भी मुसलिम संस्कृति से संबंध रखती हुई हों। भीम के समान बलवान ही बार-बार क्यों कहा जाता है?

रुस्तम के समान बलवान क्यों न कहा जाय ? कुछ मास पूर्व कलकत्ता-विश्व-विद्यालय में महोत्सव हुआ था। राष्ट्र-गीत 'वन्देमातरम्' प्रारम्भ होते ही मुसलिम विद्यार्थियों ने शोर मचाना प्रारम्भ कर दिया। विश्व-विद्यालय की ध्वजा पर विद्या की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती का चित्र सुशोभित था। मुसलिम विद्यार्थियों ने मूर्ति-पूजा और बुतपरस्ती के नाम पर शोर-गुल मचा कर उस चित्र तथा ध्वजा को निकलवाने के लिए बहुत प्रयत्न किया।

मुसलमान लोग अपनी संस्कृति की छाप समस्त बंगसाहित्य पर चाहते हैं, परन्तु उन लोगों को सीमा-प्रान्त में हिन्दू संस्कृति की रक्षा का प्रश्न असह्य होता है। भोपाल तथा हैदराबाद की रियासतें पाठशालाओं में हिंदू विद्यार्थियों को उर्दू भाषा तथा अरबी लिपि ही सिखाती हैं। मुसलमानों की यह ज़बरदस्ती देखिये और देखिये कुछ हिंदू लोगों की भय-वृत्ति। एक मुसलमान ने महात्मा गाँधी को पत्र लिखा कि भूषण के काव्य में मुसलमानों की निंदा है। गाँधीजी ने क्या किया ? क्या भूषण के काव्य को पढ़ा ? नहीं। वे स्वयं स्वीकार करते हैं कि उन्होंने भूषण के काव्य को नहीं पढ़ा है। परन्तु उन्होंने भूषण ऐसे प्रसिद्ध कवि के काव्य को निषिद्ध बतला कर हिन्दी के पाठ्य-ग्रन्थों से उसके कुछ उद्धरण न लेने का निर्णय कर दिया।

सब से विचित्र बात तो यह है कि मराठी तथा हिंदी में जो उर्दू शब्द प्रविष्ट हैं, उनको अपनी मान-हानि का द्योतक न समझ कर कई लोग गौरव अनुभव करते हैं। सच पूछा जाय तो क़बूल, हाज़िर, क़ायदा आदि शब्द जो हमारी भाषा में आ गये हैं, वे हम पर मुसलिम विजय के द्योतक हैं। जहाँ तक सम्भव हो, इन विजय-चिन्हों को नष्ट करना हमारा कर्तव्य है। इस कार्य में लोग इसलिए हिचकते हैं कि उन्हें मुसलमानों के अप्रसन्न हो जाने का भय है। वे इस प्रकार का

तुच्छ सिद्धान्त उपस्थित करते हैं कि उर्दू भाषा के ये शब्द तो हमारी विजय के द्योतक हैं। जिस प्रकार युद्ध में विजयी होने पर लोग शत्रुओं के चिन्ह ले आते हैं, उसी प्रकार ये शब्द भी हमारी भाषा में आये हैं। इसीलिए वे उर्दू शब्दों का व्यवहार करने में गौरव अनुभव करते हैं। आजकल लोग 'मेरी मदर सिक है', 'मेरी वाइफ मायके गयी है,' 'घर पर कुक करने को कोई नहीं है', ऐसे वाक्यों तथा शब्दों का व्यवहार करते हैं। क्या इस प्रकार की बदलरी भाषा अंग्रेजी पर विजय प्रमाणित करती है? क्या अंग्रेजी पर आक्रमण करके हमारा नाई 'हेयर कटिंग सेलून' और धोबी 'वाशिंग कम्पनी'' शब्दों को गुलाम बनाकर उनका प्रयोग करता है? अंग्रेजी सत्ता के कारण हम जिन अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग करते हैं, वे हमारी दासवृत्ति के सूचक हैं। यह हिंदी और मराठी भाषा पर अंग्रेज़ की चढ़ाई है या हिंदी और मराठी भाषा की अंग्रेजी पर विजय?

उपर्युक्त बात मुसलमानी शासन-काल के उर्दू शब्दों के लिए भी कही जा सकती है। उस समय पूना के सब बाज़ारों के नाम मुसलमानी ढंग के थे। पूना आग से जल जाने के बाद जब पेशवा ने उसे फिर बसाया तब सब बाज़ारों के नाम शुक्रवार, शनिवार आदि रखे गये। वह क्या पेशवा की पराजय थी? यदि वही मुसलमानी नाम आज भी बाज़ारों के रहते तो क्या वे मराठों की विजय के द्योतक होते? औरङ्गजेब ने जिस समय सिंहगढ़ जीता उस समय उसका नाम 'बख्शिंदाबख्श' रखा। मराठों ने उसे पुनः मुसलमानों से हस्तगत किया और मुसलमानी नाम हटा दिया। आज भी सिंहगढ़ सिंहगढ़ ही कहलाता है। क्या इसे हम मराठों की पराजय समझें? यदि आज सिंहगढ़ मुग़लकालीन नाम से प्रख्यात होता तो क्या वह मुसलमानों से मराठों ने जीता हुआ घोषित हो जाता? मुग़लों ने नासिक को गुलशनाबाद;

काशी और नालंदा को इस्लामाबाद आदि नाम दिये। हिन्दुओं ने इन नामों को स्वीकार नहीं किया। नासिक, काशी, प्रयाग आदि हिन्दू नाम ही प्रचलित रहे। क्या हम इसे हिन्दू संस्कृति की पराजय समझें। देवगिरि का नाम मुसलमानों ने दौलताबाद रखा और उसका यह नाम अब भी स्थित है। क्या यह हिन्दू संस्कृति का विजय-चिन्ह है? यदि हम दौलताबाद को फिर से देवगिरि कहने लगें तो क्या इससे हिन्दू संस्कृति का अपमान होगा? यदि हम 'हाज़िर' या 'सिवाय' उर्दू शब्दों को निकाल कर 'उपस्थित' या 'बिना' शब्दों का प्रयोग करें तो क्या हिन्दी भाषा का अपमान होगा? शिवाजी ने सैकड़ों उर्दू शब्दों को मराठी भाषा से बाहर निकाला था। क्या शिवाजी को भाषा का विद्रोही समझना चाहिए? सिंध के हिन्दू लोग अपनी लिपि की रक्षा नहीं कर सके। रामायण, महाभारत आदि धार्मिक पुस्तकों की तो बात ही क्या, गायत्री मंत्र तक वहाँ प्रायः उर्दू लिपि में उल्टे छापे जाते हैं। इससे क्या हम यह समझें कि हिन्दुओं ने मुसलमानों की लिपि पर विजय प्राप्त कर ली है? दासवृत्ति से बिगड़ी हुई मनोवृत्ति का यह कितना सुन्दर उदाहरण है! अपनी शृंखला को ही गुलाम अपनी विजयमाला समझता है!

अन्त में हम यह कह देना चाहते हैं कि संस्कृतनिष्ठ हिन्दी को ही हर हालत में राष्ट्र-भाषा बनाना चाहिए। मुसलमान लोगों को प्रसन्न करने के लिए हिन्दी को विकृत करने की आवश्यकता नहीं। हिन्दी से संस्कृत शब्दों का बहिष्कार उचित नहीं। संस्कृत शब्दों से युक्त हिन्दी ही राष्ट्र-भाषा के पद की अधिकारिणी है। राष्ट्र-लिपि भी नागरी-लिपि ही हो सकती है।

[हिन्दी मासिक 'वीणा', अगस्त १९३७]

राष्ट्रभाषा और राष्ट्रलिपि

(पूर्वार्ध)

एक देव, एक देश, एक भाषा ।
एक जाति, एक जीव, एक आशा ॥

पच्चीस वर्ष पहले 'हिन्दुस्तान की राष्ट्र भाषा एक हो' यह विषय व्यावहारिक, राजनैतिक और सामाजिक कार्यों की श्रेणी से इतना बाहर समझा जाता था कि उस संबंध की सभाओं में कोई इसकी सहसा चर्चा तक न करता था। यह किसी किसी निद्रित का स्वप्नमात्र समझा जाता था। प्रगतिशील पत्र, वक्ता और नेता ऐसा समझते थे कि ऐसे विचार को प्रोत्साहन देने से लोग उन्हें भी शेखचिल्ली न कहने लगें। उस समय के प्रस्तावों, लेखों और आन्दोलनों में अपनी राष्ट्र भाषा एक होनी चाहिये, इस विषय का उल्लेख मात्र भी कितना कम मिलता है यह उस समय के साहित्य से स्पष्ट दीख पड़ता है।

एक स्मृति

उसी समय सन् १९०८ से १० तक के वर्षों में लण्डन नगर में इंडिया हाऊस के वासगृह में जो भारतीय विद्यार्थी रहते थे उनका यह नियम था कि शीत प्रदेश की पद्धति के अनुसार प्रति दिन रात्रि को अंगीठी के पास मंडली बनाकर बैठते और वार्तालाप करते थे। उनमें से बहुत सी चर्चा अपने राष्ट्र के उद्धार के लिये क्या क्या आवश्यक है, यह थी। इसका निश्चय करके सोने जाने के पूर्व सब उठकर खड़े होते

और गंभीरतापूर्वक अपनी राष्ट्रीय प्रतिज्ञा का उच्चारण करते थे । उनमें से दो प्रतिज्ञायें यह भी थीं :—

हिन्दी को राष्ट्रभाषा करूंगा ।
नागरी को राष्ट्रलिपि करूंगा ॥
एक देव, एक देश, एक भाषा ।
एक जाति, एक जीव, एक आशा ॥

हम मुट्ठीभर नवयुवकों की इन प्रतिज्ञाओं को जब उस समय के कुछ एक नेता सुनते थे तो उन्हें यह हंसी मज़ाक जान पड़ता था। और कुछ एक इनको अश्रद्धापूर्ण विनोद से सुख स्वप्न ही कहते थे। आज पच्चीस वर्ष पीछे उन स्वप्नों में से दो स्वप्नों के सत्य होने की भारी सम्भावना प्रतीत होती है। वास्तव में तो इस प्रकार का विषाद होता है कि जो कार्य हमारे राष्ट्र के हाथ से पांच वर्ष में धड़ाके से होना चाहिये था, उसका पच्चीस वर्ष बाद कुछ कुछ आरंभ ही हुआ है। किन्तु आयर्लैंड जैसे राष्ट्र को अपनी राष्ट्रभाषा को पुनरुज्जीवित करने का कार्य करते सौ वर्ष हो गये और अभी वह पूर्ण नहीं हो रहा, यह देखकर पच्चीस वर्ष में कुछ तो हुआ, इतना ही समाधान! हिन्दी को राष्ट्रभाषा और नागरी को राष्ट्रलिपि बनाने का प्रश्न आज सामाजिक और राजनैतिक कार्यों में एक आवश्यक प्रश्न और देश-व्यापी जीवित आन्दोलन हो गया है, यही थोड़ी बहुत सन्तोष की बात समझनी चाहिए।

सार्वजनिक प्रचार का प्रयत्न

परंतु अब पच्चीस वर्ष के सतत् प्रचार, चर्चा और राष्ट्रीय उत्साह के कारण कम से कम हिन्दुओं का 'हिन्दी' ही राष्ट्रभाषा और 'नागरी' ही राष्ट्रलिपि ऐसा निश्चय हुआ है। बंगाल से सिंध और पंजाब से

मद्रास पर्यंत समस्त हिंदू राष्ट्र इसको व्यवहार में लाने का प्रयत्न कर रहा है। हिन्दी के राष्ट्रभाषा होने का प्रयत्न हिंदी-भाषी प्रांतों ने तो किया ही किया, किन्तु औरों ने भी किया है। हिन्दुओं का एक मात्र स्वतंत्र राष्ट्र नेपाल है। वहाँ प्रथम से ही हिंदी नागरी, यही भाषा और लिपि थी। आर्य समाज का भी यह धार्मिक व्रत था, यहाँ तक कि ऋषि दयानन्द सरस्वती ने अपने सत्यार्थप्रकाश में, जो कि आर्य समाज का मूलभूत धर्म मीमांसा ग्रन्थ है, 'हिन्दी और नागरी ही हिन्दू राष्ट्र की राष्ट्रभाषा और राष्ट्रलिपि है' ऐसी घोषणा करने का निर्देश दिया है। बड़ोदे के प्रगतिशील राजा श्रीमान सयाजीराव गायकवाड़ ने भी बहुत पहले इस ध्येय को फैला कर अब अपनी संस्थाओं में उस भाषा और लिपि को राजभाषा और लिपि करने का स्तुत्य साहस किया है। महात्मा गांधी जी ने भी उस ध्येय को उठाकर तथा सिद्धांत चर्चा में समय न लगा कर अपने सामर्थ्य के द्वारा पहिले पहिले मद्रास जैसे दूरवर्ती प्रान्त में इस भाषा और लिपि का प्रचार करने के लिए राष्ट्रासभा में इसे स्थान दिया। परंतु फिर दुर्दैववश से गांधीजी के हाथों से ही आज संस्कृतनिष्ठ हिंदी की क़बर खोदी जा रही है, उनके ही ऊपर हिंदुस्तानी का भूत सवार हुआ है।

प्राचीन काल पर एक दृष्टि

इस समय यह भी भूलने की बात नहीं कि जिस समय भारत में अंग्रेजी का नाम भी न था, उस समय भी साधु-संतों और व्यापारी वर्ग ने भारतखंड भर में हिंदी भाषा का प्रचार किया और ब्राह्मण वर्ग ने संस्कृत धार्मिक साहित्य को नागरी में ही लिखने की परंपरा डाल कर और शत प्रतिशत कट्टरता के साथ उसका पालन करके नागरी को राष्ट्र लिपि बनाने की नींव डाली। उन साधु-संत, व्यापारी-वृन्द और पंडित वर्ग का हम सब को आभारी होना चाहिए। अति विस्तृत हिन्दू

राष्ट्र को एक जीव, एक प्राण करने के कठिन कार्य में राष्ट्रभाषा और राष्ट्रलिपि के अमोघ साधनों को उन्होंने ही जुटाया, अंग्रेजी आने के समय उस क्रिया के कारण हिंदू राष्ट्र के लिए तो हिंदी राष्ट्रभाषा और नागरी राष्ट्रलिपि अधिकांश में हो ही चुकी थी। अंग्रेजी के आजाने से उस प्रक्रिया में थोड़ा खंड ही पड़ा। परन्तु अंग्रेजों के कुछ कुछ लाभों के साथ जब राष्ट्रैक्य की भावना पुनः जागृत हुई, वह पुरानी प्रक्रिया नये साधनों के साथ प्रबल वेग से फिर चलने लगी है।

परन्तु मैंने ऊपर जो एक स्मृति दी है, उस पच्चीस वर्ष के पहले ही प्रसंग में मुसलमानों की जो टेढ़ी और दुराराध्य प्रवृत्ति अनुभव में आई उसमें अब भी किंचित्मात्र सुविधाजनक परिवर्तन नहीं हुआ। यदि कुछ परिवर्तन हुआ तो उनका हिन्दी और नागरी का पच्चीस वर्ष पूर्व का विरोध अधिक बढ़कर मज़हबी पागलपन के रूप में हो गया। लंडन के इंडिया हाऊस में जब जब मुसलमान युवक आए, और इतर सब राष्ट्रीय प्रतिज्ञा के लिए उठे तो उन्होंने सदा उसमें भाग लेने से नकार ही किया। 'हिन्दी को राष्ट्रभाषा करूंगा और नागरी को राष्ट्रलिपि करूंगा' इस प्रकार हिन्दू ही क्या, ईसाई और पारसी युवक भी प्रतिज्ञा करते थे, पर मुसलमान युवक उसमें विवाद करते थे कि 'हटो, राष्ट्रभाषा और राष्ट्रलिपि उर्दू ही करनी चाहिए, हिन्दी नागरी नहीं।' उन मुसलमान युवकों में अनेक तो ऐसे थे कि उनको भली प्रकार उर्दू पढ़ना भी नहीं आता था। बंगाली, मराठी, मद्रासी मुसलमानों को लखनऊ आदि का उर्दू साहित्य है भी दुर्बोध, पर फिर भी मेरे मुसलमान भाई उर्दू ही राष्ट्रभाषा और राष्ट्रलिपि हो, यही कह बैठते थे। मुसलमानों की धर्म भाषा अरबी है, उर्दू नहीं। क्योंकि कुरान आदि उनके समस्त धर्मग्रंथ अरबी में हैं। करोड़ों भारतीय

मुसलमान भ्रष्ट हुए हिन्दू ही हैं और उनकी मातृभाषा हिन्दुओं के समान पीढ़ी दर पीढ़ी से बंगाली, पंजाबी, मराठी, हिन्दी, मद्रासी कोई सी भारतीय भाषा और भारतीय लिपि है। परन्तु 'हिन्दुओं का है वही हमारा है, यह कहने पर मेरा मुसलमानपन क्या रह जाता है ?'— इस अत्यन्त अराष्ट्रीय मज़हबी पागलपन के कारण ही मुसलमान हिन्दी और नागरी को राष्ट्रभाषा, राष्ट्रलिपि करने के विरुद्ध हैं।

पाकिस्तान का स्वप्नचित्र

मुसलमानों की यह स्थिति उस समय जैसी देख पड़ती थी वही गत पच्चीस वर्षों में, किसी हिन्दू की हाँजी हाँजी के लिए भीख न डालती हुई, अपरिवर्तित रूप में प्रतिदिन अधिक ही दृढ़ होती जा रही है। हिन्दी और नागरी का प्रचार करते हुए और सैंकड़ों मुसलमानों के साथ इस विषय में वाद-विवाद करते हुए गत पच्चीस वर्षों में मुझे जो स्वयम् अनुभव हुआ है उससे यह निश्चय हुआ है कि मुसलमानों का उर्दू को ही राष्ट्रभाषा और राष्ट्रलिपि करने का, और हो सके तो उस भाषा और उस लिपि को हिन्दुओं पर भी लादने का स्थिर निश्चय हो गया है। 'राष्ट्र' शब्द का उनके कोष में केवल एक अर्थ,— मुसलमानी राष्ट्र है। हिंदी भाषा ही क्या, हिन्दुस्तान नाम से भी उन्हें दुःख है, अतः वे इस राष्ट्र को नया नाम (पाकिस्तान) देने की बात सोच रहे हैं।

हिन्दी भाषा को मुसलमानों द्वारा स्वीकृत करने के लिए जो जो समझौते तुम करोगे, वह वह हिन्दी के हिंदीपन को दूर करके इसे उर्दू कर डालेगा, तभी वह मुसलमानों द्वारा स्वीकृत होगी। अर्थात् वह एक हिंदु-मुस्लिम 'समझौता' न होकर हिंदुओं की हार ही होगी और उर्दू ही राष्ट्रभाषा हो जायगी। पाकिस्तान राष्ट्र, अवैज्ञानिक

फारसी, अरबी राष्ट्र लिपि, एवं उर्दू राष्ट्रभाषा, मुसलमान कभी इस निश्चय से टलने वाले नहीं हैं।

हिंदू कार्यकर्ताओं की भूल

मुसलमानों की इस प्रवृत्ति के कारण उनकी हाँजी, हाँजी करते करते बहुधा जो भाषा उर्दू लिपि में लिखी जा सकती है और जिसमें उत्तरी भारत के मुसलमानों की बोल चाल में आने वाले फ़ारसी, अरबी शब्दों का प्रवेश है, ऐसी 'हिन्दुस्तानी' समझी जाने वाली भाषा राष्ट्रभाषा हो तो ठीक है, उसी को हिन्दी समझ लें,—ऐसी सूझ गत पाँच छः वर्षों से हिन्दुओं में से भी कुछ लोगों की हुई हैं। और गत हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के कुछ प्रस्तावों में यही प्रतिध्वनित होता है। इसका तीव्र विरोध करने वाले उत्तरी हिंन्दुस्तान के पत्रों में हिन्दी भाषा की उन्नति के लिए आजन्म कष्ट उठाने वाले अनेक नेता और पत्रकारों ने भी, मैं जैसा कहता हूँ, वैसा ही अपना अपना अनुभव प्रकट किया है। उदाहरणार्थ हिन्दू महासभा के कार्याध्यक्ष और पंजाब के प्रख्यात हिन्दू नेता भाई परमानन्द जी अपने 'हिंदू' पत्र में लिखते हैं:—

"मैं यह दृढ़ता से कहता हूँ कि 'नागरी से उर्दू लिपि अच्छी है' यह कोई बलपूर्वक नहीं कह सकता। और तुर्की से सदृश मुसलमानों के अग्रगण्य राष्ट्र नेताओं ने भी उसको निकाल कर कुरान भी रोमन लिपि में छाप लिया है, ऐसी स्थिति में उर्दू लिपि का बोझ महात्मा गांधी हमारे उपर क्यों लादना चाहते हैं? उनकी मुस्लिम-परस्ती यहाँ भी दूर नहीं हुई। मैं अपने गत तीस वर्षों के अनुभव से कहता हूँ (और भाई परमानन्द जी पंजाब के और दिल्ली आगरे की ओर के हज़ारों मुसलमानों में रहने वाले और स्वयं जन्मभर उर्दू में ही

लेख लिखने वाले, इस बात को भली भाँति जानते हैं) कि कितनी ही हाँजी हाँजी की जाय तो भी मुसलमान लोग अरबी फारसी शब्दों का प्रयोग करना नहीं छोड़ेगें, चाहे हिंदू संस्कृत शब्दों का प्रयोग छोड़ें वा न छोड़ें। हिंदू उर्दू में लिखें या न लिखें, इसकी मुसलमानों को कोई परवाह नहीं, मुसलमान मात्र समझौते की दृष्टि से अशंतः भी नागरी को स्वीकार न करेंगे। जिस प्रकार इस मुसलमान-परस्ती के कारण राष्ट्रीय हिंदू दुर्बल हो गये, उसी प्रकार गांधीजी की हाँजी हाँजी की मुस्लिम-परस्ती हिन्दी को भी दुर्बल और नाम शेष करके छोड़ेगी। हिंदी साहित्य सम्मेलन के कर्णाधारों को सावधान होना चाहिए।"

['आर्य मित्र' दिनांक १६-१२-१९३५]

——(:o:)——

(उत्तरार्द्ध)

राष्ट्रयी भाषा का अर्थ यह है कि वह उस राष्ट्र के गंभीर विचारों और विशिष्ट प्रवृत्ति की द्योतक और पोषक हो। हमारी भारतीय राष्ट्र भाषा में हमारी संपूर्ण राष्ट्रीय कर्मण्यता और बुद्धिमत्ता व्यक्त होगी। राष्ट्र का तत्वज्ञान, काव्यकला, राज्यशासन, नियमविधान, रसायन, युद्धप्रबंध, जीव विज्ञान, प्राणि शास्त्र, वैद्यक, वास्तुकला, यन्त्रकला, भारतीय राष्ट्र के उत्तम विचार, कल्पना और कृति को जो अभिव्यक्त कर सके वही भारत की राष्ट्र भाषा है। जैसे यह किसानों के गीतों का साथ देगी वैसे कालिदास के मेघदूत का भी, पालने के पास वह अटपटी बोली का रूप धारण करेगी और वही उपनिषद् के महर्षियों के संवादों में गंभीर ब्रह्मज्ञान पर भाषण देगी। जिस प्रकार कलकल-

वाहिनी गंगा के सहस्रों योजन तीर पर होने वाले सैंकड़ों दृश्यों का उस में प्रतिबिंब पड़ता है, जैसे हिमालय और हरिण, उपवन और अरण्य, प्रासाद और पर्णकुटी, हरित क्षेत्र और रक्तरंजित रणभूमि ध्यानस्थ बुद्ध की समाधि और यूनानियों पर चढ़ दौड़ने वाले चंद्रगुप्त, की सेना अपनी २ प्रतिछाया भागीरथी में गिराती आई है उसी प्रकार हमारे राष्ट्रीय जीवन की प्रतिछाया जिसमें पड़ती है वही हमारी राष्ट्रीय भाषा है। केवल आठवें दिन गांव में लगने वाले बाज़ार में या शहरी बाज़ार में काम आने वाली नहीं। ऋग्वेद का नासदीय सूक्त, अभिमन्यु का पराक्रम और उत्तरा का विलाप, भागवत में होने वाली भक्ति का प्रवाह, योग वाशिष्ठ का विवेक, गीता का विश्वरूप, कथा-सरित सागर की कल्पना की उड़ान और आजकल बिजली, रेडियम, रसायनादि विषय का गणित संबंधी विज्ञान—इन सब की यथावत् अभिव्यक्ति जिसमें होनी चाहिये, वह राष्ट्रभाषा केवल ग्रामीण बाज़ार में जो बोलते हैं और समझते हैं, उन ग्रामीण शब्दों के कोश में कभी भी सीमित नहीं हो सकती।

वैज्ञानिक परिभाषा

प्रगतिशील विज्ञान का प्रचार अपने राष्ट्र में करने के लिये प्रतिलक्ष पारिभाषिक शब्द गढ़ने पड़ेंगे। वे गांव के लोगों की बोली में मिलने वाले नहीं हैं। वनस्पति शास्त्र में ही हज़ारों पारिभाषिक शब्द लगेंगे, वैद्यक में, युद्धशास्त्र में, रामायण में, रसायन में, विद्युत शास्त्र में, शासन विधान में, निर्बंध शास्त्र में (क़ायदे क़ानून में), ज्योतिष में, विमानविद्या में, भूगर्भ शास्त्र में, विज्ञान की प्रत्येक शाखा में, सहस्रों पारिभाषिक शब्द होंगे, उनके बनाने के लिये संस्कृत के अनंत रत्नाकर की शरण लेनी पड़ेगी।

मुसलमानों का दुराराध्य निश्चय

हिन्दी में संस्कृत शब्दों का प्रवेश न हो, जो आज उर्दू में लिखी जाती है वह अरबी, फारसी मिली हिन्दुस्तानी ही हिन्दी का साधारण रूप हो, उसमें अंगरेजी आदि विदेशी भाषाओं के सैंकड़ों शब्द जैसे व्यवहार में घुसें वैसे वैसे ही घुसने दिये जावें---इस प्रवृत्ति का भीतरी कारण यह है कि जिस राष्ट्रीय भाषा में हिंदुत्व की गंध भी मुसलमानों को न आये, उसे वे स्वीकार करें। वह अब तक नहीं हुआ, कभी न हो सकेगा। मुसलमानों ने उर्दू भाषा को, जो अरबी और फारसी से भरी हुयी है, हिंदुस्थान पर राष्ट्रभाषा के बहाने लादने का निश्चय किया है। यही नहीं, उन्होंने हिन्दुओं के हाथ से प्रान्त के प्रान्त कैसे छीन लिये हैं, यह महाराष्ट्र जैसे प्रांतों को बिलकुल ज्ञात नहीं है। स्थल संकोच के कारण उसका निर्देश यहाँ नहीं किया जा सकता। काश्मीर की भाषा और लिपि सरकारी तौर पर उर्दू हो गयी, पंजाब (सिद्धांत) में यद्यपि उर्दू वैकल्पिक है। निजाम की युनीवर्सिटी संपूर्ण राज्य में हिन्दुओं को भी उर्दू भाषा और लिपि सिखा रही है। अलीगढ़ और लखनऊ तो उर्दू के केन्द्र ही हैं। अधिक क्या, कोंकण में, जिस गांव के मुसलमानों की बोली भी मराठी है, तबलीग़ और तंज़ीम इन उर्दू शब्दों का जहाँ अर्थ भी नहीं समझते, वहां भी उर्दू पाठशालाएं खुलती जाती हैं। उर्दू लिपि मुद्रण आदि कार्यों के लिये अनुपयुक्त होने के कारण तुर्कों ने छोड़ दी है। उसी को उठाने के लिये हज़ारों रुपये खर्च करके निजाम ने उसमें सुधार किया है, उसको वास्तलिक ऐसा अगड़बंब नाम दिया है और मिश्र का सिक्का उसपर ठोक दिया, परंतु ९० प्रतिशत लोगों की मातृलिपि होने पर भी नागरी को स्वीकृत नहीं किया। कारण यह है कि वह हिंदुओं की ही है।

ऐसी स्थिति में राष्ट्रीय भाषा को एक करने के व्यर्थ आशा के कारण यदि हिंदुओं ने मुसलमानों से समझौता किया तो हर तरह से उर्दू के रास्ते पर चलने वाली भाषा ही स्वीकृत होगी।

समझौता कैसे ?

मुसलमानों की अड़ संस्कृत शब्दों का बहिष्कार करने की है। वह साहित्य-सम्मेलन ने मान ही ली। पर दूसरी ओर तुम अरबी आदि शब्दों को फेंको, इसको एक भी मुसलिम संस्था या लेखक मानने वाला नहीं। बल्कि हज़ारों पारिभाषिक शब्द अरबी के विकृत और लंबे लंबे निज़ाम और अलीगढ़ की यूनीवर्सिटियाँ नियमित रूप से मिला रही हैं और आग्रहपूर्वक हिन्दुओं को भी सिखाती हैं। सहस्रों हिन्दू लेखक समाचार पत्रों और कचहरी आदि में, जो उर्दू लिपि में लिखते हैं, वे ठेठ उर्दू में लिखते हैं। पर मुसलमानों में संस्कृत 'श्रीयुत' जैसे सरल शब्द का भी बहिष्कार है, वे नागरी लिपि की ओर तो देखेंगे भी नहीं। ऐसी स्थिति में राष्ट्रभाषा की रस्साकशी में हिन्दू ही, जिन्होंने हिन्दी का छोर पकड़ा है, बराबर समझौते के लिये ढील देते जाते हैं, और मुसलमान बिना किसी विचार के धर्मोन्माद के प्रबल वेग से खींचते जाते हैं। इसका परिणाम एक ही होगा कि अंत में हिन्दुओं का पक्ष धूल में गिरता पड़ता दूसरी ओर खिंच जायगा और उर्दू ही राष्ट्रभाषा होकर रहेगी। हिन्दी में संस्कृत शब्द मत बोलो, पर अरबी, अंगरेज़ी और तुर्की शब्द आवें उन्हें घुसने दो। इसको क्या समझौता कहते हैं ?

एक होने का ठीक मार्ग

मुसलमान अंगरेजी पारिभाषिक शब्दों को उत्साह से ग्रहण करते हैं, पर संस्कृत शब्दों को नहीं। ऐसी स्थिति में कैसा समझौता ?

और हो भी सके कैसे ? बाईस करोड़ हिंदुओं का सौभाग्य से हिन्दी को राष्ट्रभाषा और नागरी को राष्ट्रलिपि करने का निश्चय हो गया है। उन्हीं को अभी यह निश्चय भी कर लेना चाहिये कि जो बाईस करोड़ की भाषा और लिपि है वह सात करोड़ को माननी ही चाहिये। यदि इस पर वे राजी नहीं तो उन्हें एक तरफ पड़ा रहने दो। राष्ट्रीय विचार विनिमय की हमें ही आवश्यकता है, उनको नहीं, यह बात तो है नहीं। बाईस करोड़ हिन्दू क्या बोलते हैं, क्या व्यवहार करते हैं, यह जानने के लिये उन्हीं को भारी अड़चन पड़ेगी। पीछे स्वयं आयेंगे, हिन्दी में बोलने लगेंगे, और नागरी में लिखने लगेंगे। ठंठपन ठंठपन से ही ठीक हो सकेगा। राष्ट्र हमारे लिये है तो उनके लिये क्या है नहीं। जब तक उनके लिये राष्ट्र-ऐक्य की आवश्यकता नहीं तब तक समझौता हो नहीं सकता। जब मुसलमानों को भी एकता, एक भाषा, एक लिपि की आवश्यकता प्रतीत होगी तभी ऐक्य की बात कहने का ठीक समय होगा।

राष्ट्रैक्य का सूत्र

एकता के दो ही ठीक मार्ग हैं। एक तो सारे के सारे हिन्दुओं का मुसलमान होना और हिन्दुस्तान को पाकिस्तान करना, अथवा हिन्दुओं के बिना रहना कठिन है इस प्रकार बाध्य होकर मुसलमानों का स्वयं एकता की प्रार्थना करना, तीसरा मार्ग नहीं है। यह बुरी लगने की बात नहीं है। बाईस करोड़ हिन्दुओं की एकता को छोड़कर सात करोड़ मुसलमानों का ही काम अधिक रुके, इतना संगठन करने की यदि अपनी हिम्मत हो तो दूसरा मार्ग ठीक है और यदि नहीं तो मुसलमान हो जाओ। पर हिन्दू रह कर उन के सामने एकता के लिये हा हा खाने से राष्ट्रैक्य हो सकेगा, ऐसी आशा दुराशा मात्र है। किसकी राष्ट्रभाषा, किसकी राष्ट्र-लिपि और किसकी राष्ट्रैक्य लेकर बैठे हो, जहां कि तुम्हारा और

उनका राष्ट्र ही एक नहीं। वे तो खुले आम कहते हैं कि हमारा राष्ट्र हिंदुस्तान; उनका पाकिस्तान—मुस्लिमस्थान। अतः हमारी हिंदूमात्र से यह विनती नहीं, चेतावनी है कि यह भाषा का प्रश्न समझौते से हल न हो सकेगा। वह धार्मिक, सांस्कृतिक और राष्ट्रीय सर्वस्व के मौलिक प्रश्न के साथ गुंथा हुआ है, ऐसा निश्चित विचार करके राष्ट्र-भाषा और राष्ट्र-लिपि इन प्रश्नों में मुसलमानों को छोड़ दो। बाईस करोड़ हिंदुओं का एक मत है। जो वह कहेंगे वह मान्य होना ही चाहिये। तब हिंदू-राष्ट्र की राष्ट्रभाषा और राष्ट्रलिपि का एक करना आज शक्य है। और उसका सूत्र यह है कि हम हिंदुओं का राष्ट्र—हिंदुस्तान; हम हिंदुओं की राष्ट्रभाषा—हिन्दी; हम हिंदुओं की राष्ट्र-लिपि—नागरी।

इसके अतिरिक्त हम कुछ नहीं जानते। बराबर मुसलमानों की दाढ़ी खुजाते हुए बैठे रहने की निंद्य मुस्लिम-परस्ती को छोड़ देना चाहिये। अतः राष्ट्रलिपि रहेगी एक ही—नागरी; और वही बात राष्ट्रभाषा की है; वह भी एक ही रहेगी—हिन्दी। इससे हिंदू-राष्ट्र को कोई कठिनाई नहीं। यदि मुसलमानों को भी कुछ कठिनाई न हो तो और भी अच्छा। हमें राष्ट्रभाषा और राष्ट्रलिपि के सम्बन्ध में तनिक भी समझौता करने की आवश्यकता नहीं। अतः अन्तिम सूचना यह है कि—

(१) हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन को हिन्दी की उपासना करने के अपने मुख्य उत्तरदायित्व को भूलकर उसके साथ विश्वासघात न करके उसको हिंदू-राष्ट्र की राष्ट्रभाषा बनाने का ध्येय ही सामने रखना चाहिये। हिंदी संस्कृतयुक्त, संस्कृतनिष्ठ ही रहनी चाहिये और नागरी में ही लिखी जानी चाहिये। ऐसा प्रस्ताव पास करने की

आवश्यकता है। संस्कृत तो हमारी संस्कृति ही है। जिस हिन्दी में संस्कृत की रोक हो वही उर्दू है।

वह हम हिंदुओं की राष्ट्रभाषा हो ही नहीं सकती। इसलिये सब हिन्दी-लेखकों को सभी नये व्यावहारिक या पारिभाषिक शब्द संस्कृत से ही बनाने चाहियें। विदेशी भाषाओं के जो शब्द शहरों और बन्दरगाहों की भाषा में घुसे हुए हैं और जिन्होंने हमारे अपने शब्दों को अकारण ही मार डाला है, जैसे—हाज़र, क़बूल, क़ायदे, क़ौम, दिल, कौन्सिल आदि—विदेशी शब्दों का बहिष्कार करना चाहिये। जो वस्तुएं ही विदेशी हैं और उनके नाम यदि अपने पास न मिल सकें तो उन्हीं के नाम विदेशी ग्रहण करें; जैसे—गुलाब, जलेबी, बूट, सरदा, कुर्सी, मोटर; उनसे हमारी शब्द-सम्पत्ति बढ़ेगी। परन्तु पहले से उपस्थित स्वकीय शब्दों को मार कर विदेशी शब्दों का ग्रहण करना शब्द-सम्पत्ति की वृद्धि नहीं, अपितु औरस पुत्र को मार कर दत्तक पुत्र लेने के समान है। पिस्तौल और बन्दूक शब्द लिये जा सकते हैं, पर 'बाप' को 'वालिद' या 'फादर' कर डालना ठीक नहीं।

(२) हिन्दी प्रचार के समय एक और संकट टालना चाहिये। वह भी जिस प्रांत में बंगाली, मराठी, गुजराती, कानड़ी, तामिल, तिलगू आदि संस्कृतनिष्ठ भाषाओं का अधिकार है। उनमें हिन्दी का प्रचार करते हुए स्वामी दयानन्द सरस्वती या नागरी-प्रचारिणी-सभा की शुद्ध हिंदी संप्रदायकी संस्कृतनिष्ठ हिन्दी सिखानी चाहिये। उर्दू-हिंदी मिश्रित जो भाषा है वह न सिखाई जाय; नहीं तो मराठी और बंगाली के समान जो भाषा अरबी अंगरेजी आदि विदेशी शब्दों के संपर्क से सापेक्षतः अकलंकित है, उसमें भी बाज़ारी उर्दू के हज़ारों विदेशी

शब्दों की भरमार होकर हमारे संस्कृतनिष्ठ भाषाओं के प्रसन्न प्रवाह को कलुषित कर डालेगी। यदि महाराष्ट्र में भाषा की शुद्धि का सतत् प्रयत्न न रहता तो मराठी भाषा इतनी संस्कृतनिष्ठ और उज्ज्वल न रहती और महाराष्ट्र की भी वही दशा होती जो पंजाब, सिंध, लखनऊ की हुई। लिपि का भी जैसा घालमेल वहां हुआ वैसा ही यहां होता। भाषा-शुद्धि की अग्नि में ताव देकर निकाली हुई संस्कृत-निष्ठ शुद्ध हिन्दी ही इधर सिखानी चाहिये। उर्दू-मिश्रित हिंदी के संसर्ग से मराठी और बंगाली भी उज्ज्वल नहीं रहेंगी। इस बात का हिंदी-प्रचारकों को ध्यान रखना चाहिये।

("आर्यमित्र" दिनांक २-१-१९३६)

देवनागरी लिपि में सुधार—

हमारे हिन्दू-राष्ट्र (भारतवर्ष) की संस्कृत-वर्णमाला और कंठ-तालव्यादि स्थान-भेदों के द्वारा उस की जो यथाक्रम रचना की गई है वह इतनी वैज्ञानिक, सूक्ष्म और संसार भर की मानव जाति में प्रचलित नाना प्रकार की वर्णमालाओं में उत्कृष्ट है कि जिसे हम अपने प्राचीन पूर्वजों का एक आश्चर्यकारक आविष्कार समझ कर अपनी संस्कृति पर गर्व कर सकते हैं। किंतु उस वर्णमाला को अंकित करने के लिये उन्होंने जिस लिपि की योजना की है, उसके अक्षरों के आकार के सम्बन्ध में प्रारम्भ से ही बड़ी गड़बड़ी-सी मची हुई दिखती है। उसके बिलकुल वैदिक-स्वरूप की बात तो जाने ही दीजिये, किंतु पाणिनी-काल का स्वरूप भी आज निश्चित रूप से नहीं बताया जा सकता। इतना ही नहीं, वरन् उस काल की लिपि भी आज उपलब्ध नहीं है; और यही कारण है कि आज अनेक परिश्रमी संशोधक यह कहने का दुस्साहस कर रहे हैं कि उस समय आर्यावर्त में लिपियों का आविष्कार ही नहीं हुआ था, तथा पाणिनी निरक्षर (जिसे अक्षरों का ज्ञान न हो) था। किंतु सौभाग्यवश अशोक के 'शिलालेख' आज उपलब्ध हो रहे हैं। अन्यथा ये लोग यह कहने से भी पीछे न हटते कि हिंदुओं को लिपि (लिखने की) की कल्पना प्रथमतः यूनानियों ने ही सुझाई। परन्तु अशोक-कालीन लिपि और वर्तमान लिपि में भी अक्षरों का स्वरूप बदलकर इतना विचित्र हो गया है कि आज उसके पूर्वरूप को देखकर आश्चर्य होता है। उदाहरण के लिये 'य' अक्षर को ही लीजिये। अशोक-काल, कुशान-काल, बुद्धगया लेख, आदि

विभिन्न समयों में इस का स्वरूप क्रमशः इस प्रकार बदलता गया है।

ⵜ, ⅃, ꝛ, य = य

इस से यह प्रकट होता है कि उच्चारणों का वैज्ञानिक पृथक्करण कर के वर्णमाला को "सोपपत्तिक" रूप में निश्चित किया गया और संभवतः इसी कारण पाणिनी से लेकर आज तक वह हिंदू-राष्ट्र (भारतवर्ष) में ज्यों की त्यों स्थिर रह सकी है। किंतु अक्षरों के स्वरूप किस सिद्धांतानुसार निश्चित किये गये, इसका ठीक-ठीक स्पष्टीकरण आज तक नहीं हो पाया। और उनके स्वरूप का युक्तियुक्त समर्थन करने वाली कोई उत्पत्ति न लगाई जा सकने से ही यह कहना पड़ता है कि उनके आकार भवितव्यता की लहरों में बहते बहते कहां से कहां आ पहुँचे हैं।

आज भी एक एक अक्षर भारत के भिन्न-भिन्न देशों में विभिन्न रूपों में लिखा जाता है।

वर्णमाला का अर्थ है—अक्षरों के उच्चारण की व्यवस्था। और यद्यपि वह एक ही है, तथापि अक्षरों के स्वरूप की अव्यवस्था के कारण ही आज देश में अनेक लिपियां प्रचलित हैं। इतना ही नहीं वरन् वर्तमान् देवनागरी लिपि में ही एक-एक अक्षर अनेक रूपों में लिखा जाता है। उदाहरणार्थ 'र' को ही लीजिये। देवनागरी लिपि में 'न्या' 'ट्र' 'र्व' 'प्र' और मूल रूप 'र' इस तरह चार-पांच स्थानों में चार-पांच प्रकार से लिखा जाता है। किन्तु एक उच्चारण व्यक्त करने के लिये एक ही रूप होने का नियम किसी भी लिपि की उत्तमता का एक मुख्य प्रमाण होता है। वर्तमान देवनागरी लिपि में यह विशेषता नहीं है। इसी कारण उसकी त्रुटियों को दूर कर उसे सर्वाङ्गपूर्ण

बनाने की आवश्यकता कई लिपि-सुधारकों को प्रतीत हुई। उसमें भी फिर मुद्रण-कला का प्रसार बढ़ता जाने के कारण यदि इस मुद्रण-युग में हमें अपनी नागरी लिपि को अन्य मुद्रणानुकूल लिपियों से टक्कर लेकर संसार में जीवित रखना हो तो उसके वर्तमान स्वरूप में इस दृष्टि से आवश्यक सुधार करना ही होगा। अंग्रेजी लिपि से आज की नागरी लिपि बहुधा इसी कारण छपाई की सुगमता की दृष्टि से कई अंशों में अयोग्य सिद्ध होती है। एक एक अक्षर के अनेक रूप होने और उसमें भी संयुक्ताक्षरों का अशास्त्रीय पचड़ा बढ़ जाने से ही आधुनिक नागरी सीखने में कठिन और छापने में असफल सिद्ध हो रही है। देवनागरी लिपि को उसके वर्तमान स्वरूप में छापने के लिये चार सौ से अधिक (टाईप) अक्षरों की आवश्यकता होती है, अर्थात् अंग्रेजी अक्षरों की अल्प संख्या के कारण उनके सरल छापेखानों से हमारा प्रेस हर हालत में दुगुना ही नहीं तिगुने से भी अधिक महंगा पड़ता है। नागरी लिपि के संयुक्ताक्षर आदि अनेक स्वतंत्र अक्षरों एवं एक अक्षर के अनेक रूपों में लिखे जाने की विज्ञान-विरुद्ध प्रथा के कारण इसके टंक लेखक (टाइपरायटर), पंक्ति-टंकक (लिनो टाइप), एक-टंकक (मोनो टाइप) आदि यन्त्र बनाना भी बड़ा कठिन हो गया है। अधिक तो क्या किन्तु पंक्ति-टंकादि यन्त्र नागरी में बनाना दुष्कर हो जाने से ही आज हिन्दी या मराठी में 'टाइम्स' जैसे दैनिक सुबह शाम छाप कर प्रकाशित करना दुर्घट हो गया है। क्योंकि इतनी विस्तृत सामग्री द्वारा ऐसी शीघ्रता से छपाई करने के लिए कम्पोज़िटरों की पल्टन खड़ी कर देने पर भी बिना यन्त्र के काम नहीं चल सकता। और ये पंक्ति-टंकक या एक-टंकक (लिनो अथवा मोनो टाइप) यन्त्र आधुनिक नागरी में बिना काट छांट किये उतने सुगम नहीं बनाये जा सकते। उसमें भी

जब कि हम नागरी लिपि को अखिल भारतवर्ष की राष्ट्र लिपि बनाने जा रहे हैं तो अवश्य ही हमें संसार के अन्य राष्ट्रों की किसी भी लिपि के सम्मुख मुद्रण सुलभता में नागरी को कदापि पीछे न रहने देना चाहिये।

इन सब कारणों से यथा-शक्य प्रयत्न द्वारा नागरी लिपि की त्रुटियाँ दूर कर उसे छपाई में सुलभ और सीखने में सुगम बनाने योग्य सुधार करने के लिए स्व० लोकमान्य तिलक, गुरुवर्य भंडारकर, स्व० गजाननराव वैद्य, कोलहापुर के देवधर, काले लोकमित्र, गुर्जर आदि अनेक व्यक्तियों ने अनेक योजनाएँ कीं, छोटे बड़े रूप में प्रयोग भी किये और इस बात का निर्णय कर दिखाया कि नागरी लिपि के सुधार के लिये क्या क्या और किस किस प्रकार के प्रयत्न करने चाहियें और किन किन बातों का सुधार होना चाहिए। उसी नींव पर उन सुधारों को मूर्तस्वरूप देने का कार्य हाथ में लेकर इस लिपि-शुद्धि के आन्दोलन को ज़ोरों के साथ राष्ट्र भर में फैलाकर व्यवहार में लाने का संकल्प किसी को तो अवश्य करना चाहिये था, और किसी अंश में इस संकल्प की पूर्ति बम्बई के अस्तंगत 'श्रद्धानंद' पत्र ने कर दिखाई है।

सन् १९२७ अगस्त मास में लिपि-शुद्धि के आंदोलन को हाथ में लेकर चारों ओर से उसे राष्ट्रीय आंदोलन का स्वरूप देने और इस विषय को सैद्धांतिक एवं प्रयोगिक विवाद में न पड़ कर इसे प्रत्यक्ष व्यवहार में लाने के लिये अखिल भारतीयों से निवेदन करने वाला और तदनुसार उसी लिपि का उपयोग कर आने के लिये उसी में सारी लिखाई करने का संकल्प सूचक लेख हमने "श्रद्धानंद" में प्रकाशित किया था। तभी से श्री० गुर्जर, श्री० देवधर और नानल शितल आदि अनेक सुधारक आगे बढ़कर। "श्रद्धानन्द" एवं अन्य पत्रों

द्वारा उसका क्रियात्मक समर्थन करने लगे। "हिन्दी श्रद्धानन्द" के द्वारा हिन्दीभाषक प्रान्तों में भी हमारे इस लिपि सुधार के आंदोलन की प्रतिध्वनि पहुँची, 'श्री कृष्ण संदेश', 'स्वराज्य' आदि हिन्दी पत्रों ने भी इसका प्रचार किया।

प्रथमतः 'श्रद्धानन्द' में 'अ' की बाराखड़ी आरम्भ की गई और यद्यपि एक ही वर्ष में महाराष्ट्र के कोने कोने में उसका प्रचार न भी हो सका हो, तथापि प्रत्यक्ष परिचय तो हो ही गया। इसके बाद संयुक्ताक्षर तोड़के अलग लिखने तथा रेफ को बिदा करने की दूसरी सीढ़ी पर 'श्रद्धानन्द' ने पांव रक्खा। इस प्रकार प्रति सप्ताह महाराष्ट्र में कम से कम बीस बाईस हज़ार पाठकों के हाथ में शुद्ध लिपि में छपा हुआ लेख पहुँचने लगा। बलवंत, सत्यशोधक दासबोध (मासिक) विद्याविलास, संदेश, मौज, केसरी आदि पत्रों में कभी उसकी चर्चा हुई और कभी प्रत्यक्ष उसी लिपि में छपे हुए लेख भी प्रकाशित होने लगे। हमारे प्रयत्न से सुधरी हुई लिपि के टाइप भी ढाले गये। आज भी रत्नागिरी की हिन्दू सभा का सारा काम काज, लिखाई छपाई उसी में होती है। हमारा सारा पत्र-व्यवहार, लेख एवं ग्रन्थ-निर्माण भी उसी लिपि में होता है। कुछ पाठशालाओं में भी विद्यार्थियों में इसकी जानकारी, वैकल्पिक रूप में ही क्यों न हो, कराई जाने लगी है। सावरकर-साहित्य में सम्यस्त खड्ग जन्मठेप की दूसरी आवृत्ति; नेपाली-आंदोलन आदि पुस्तकों में तथा श्री० काणे की 'जय क्रांति देवी' एवं नागपुर के कई अन्य ग्रन्थ-कारों ने अपने ग्रन्थों में 'अ' की बाराखरी का पूरा पूरा उपयोग किया है। और कोल्हापुर के एक संपादक महाशय भी अपने नये ग्रन्थ में उसका उपयोग करने वाले हैं। लिपि-शुद्धि का आंदोलन इस प्रकार

ज़ोरों पर चलने के बाद महाराष्ट्र-साहित्य-परिषद् के लिये भी चुप बैठना असंभव हो गया है। श्री देवधर आदि के प्रयत्न करने पर हां-ना करते-करते अंत में मराठी साहित्य परिषद् ने एक मंडल बनाया और उसमें श्री देशभक्त नरसिंह चिंतामणि केलकर संपादक 'केसरी' के दिग्दर्शनानुसार माहाराष्ट्र के अनेक विद्वानों की सम्मतियां मंगवाकर एक विवरण गतवर्ष ही प्रकाशित किया गया है। इस प्रकार सन् १९२७ के अगस्त मास में 'श्रद्धानंद' द्वारा हमारे आरम्भ किये हुए लिपि सुधार के आन्दोलन ने सन् १९३० में सिद्धांत रूप से अखिल महाराष्ट्र की सम्मति प्राप्त की। व्यवहार रूप से महाराष्ट्र में सब शिक्षितों को हमारी लिपि-शुद्धि की यह योजना परिचित हो गई। सहस्रों लोग उसमें ही लिखते हैं।

आधुनिक देवनारी लिपि अव्यवस्थित होने पर भी उसे संसार की किसी लिपि के समान मुद्रण-क्षम एवं शिक्षा-सुलभ बनाने के लिये जिन सुधारों की आवश्यकता है, वे बहुत थोड़े है और इसी कारण उसका वर्त्तमान स्वरूप इतने अल्प परिणाम में बदलता है कि मोड़ी (मुड़ी हुई) लिपि पढ़ने में जितनी भिन्नता और नवीनता प्रतीत होती है, उसका अल्पांश भी प्रतीत न होकर नया आदमी भी अनायास ही उन रूपों को पहचान सकता है, और सहज ही वे अभ्यास में भी आ सकते हैं। वे सुधार मुख्यतः तीन हैं:—

(१) 'अ' की बाराक्षरी

स्वरों के सब रूप ह्रस्व 'अ' के साथ बाराक्षरी के चिन्ह लगाकर लिखे जायें—अ, अा, अि, अी, अु, अू, अृ, अे, अै, अो, अौ, अं, अः, यह बाराक्षरी अब सर्वमान्य हो चुकी है। और महाराष्ट्र में कई जगह प्रचलित भी हो रही है। और लगभग सभी लोग इससे परिचित

हो चुके हैं। इसमें विशेषता यह है कि अ प्रभृति कुछ तो नये नहीं, पुराने ही हैं। समर्थ रामदास, मोरोपंत आदि की हस्त-लिखित पुस्तकों में इन्हीं का प्रयोग दिखाई देता है। इस सुधार के कारण स्वरों का एक ही 'अ' का टाइप रह जाता है। शेष ८-९ अक्षरों की (ज़रूरत) और उतने टंकों की (टाइप की) जरूरत नहीं पड़ती। इस प्रकार बच्चों को भी अकेला 'अ' सिखा देने से सभी स्वर आ सकते हैं।

(२) क, फ, र :—पुराने क, फ, र—इन अक्षरों में इस प्रकार आ कार का चिन्ह (ा) लगाने से उनके तीन चार रूप कम हो जाते हैं। 'र' के प्रारंभ में कहे हुये चारों रूप लुप्त हो कर छपाई और सीखने में उन चार रूपों से बनने वाले ४० उपरूप भी अस्त हो जाते हैं। इतना होकर भी 'र' का स्वीकृत स्वरूप नया न हो कर पुराना ही रहता है। क्योंकि पुरानी पोथियों में 'र' का रूप 'ऱ' ही लिखा मिलता है। मोड़ी लिपि में 'र' का 'ऱ' यही रूप है। आधुनिक रेफ भी (ˆ) का ही रूप होने से इसे भी विदा किया जा सकता है। इस प्रकार इस उपद्रवी अक्षर का एक ही स्वरूप सर्वत्र शेष रह जाने से ग, प, व, थ आदि सरल अक्षरों की तरह 'र' भी 'ऱ' ऐसा आकार युक्त होकर इनमें मिल सकता है।

(३) संयुक्ताक्षरों को (सलग) रूप से मिला कर लिखना:—लिपि-सुधार की यह तीसरी सीढ़ी है। द्वित्व संयुक्ताक्षरों का लिखना, जैसे:—'हल्ला'; उसे किसी के साथ जोड़ना, जैसे त्र, क्र, क्क; एक को दूसरे के सिर पर बैठाना, जैसे क्क, ङ्ग ट्ट, क्त आदि समस्त अवैज्ञानिक पद्धतियाँ छोड़ कर एक ही शास्त्रोक्त, नियमानुसार उच्चारण के अनुरूप संयुक्ताक्षरों को सलग मिलाकर लिखने

की पद्धति प्रचलित हो जाने पर बच्चों को सौ-पचास अक्षर कम ही सीखने पड़ेंगे। आधुनिक छपाई के लिये टंक यंत्र में से ये सब अनावश्यक साठ सत्तर अक्षर निकल जाने पर वह भी संक्षिप्त और सुविधाजनक हो जायगा। साथ ही इसमें छपाई सस्ती होगी। क्क, ल्ल; ग्ल, त्त, श्र, क्व, श्व ऐसे सलग संयुक्ताक्षर लिखने और छापने से वे उच्चारण के अनुरूप होने के कारण शास्त्र शुद्ध भी माने जायेंगे।

ऊपर जिन तीन सुधारों की रूपरेखा बताई गई है उनका और 'डिग्री' आदि अनेक लाभों का इस छोटे से लेखमें विस्तारपूर्वक विवरण नहीं किया जा सकता, अतएव इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि यदि इतने सुधार भी हो जायं तो हमारी नागरी लिपि सीखने में सुलभ और छापने में आधुनिक जगत् की अग्रगामी लिपियों के समान अनुकूल और सुगम तो अवश्य ही हो जायगी। साथ ही यदि इस लिपि में टंक-लेखक और एक-टंकक (टाइप राइटर और मोनो टाइप) यंत्र बनाये जायें तो वे अंग्रेजी अक्षरों से भी संक्षिप्त और सुगम हो सकेंगे। इस प्रकार देव नागरी लिपि अखिल भारत की राष्ट्र-लिपि बनने की योग्यता प्राप्त कर लेगी।

(४) ट, ठ, ड, ढ आदि चोटी वाले अक्षरों को 'हल्' चिन्ह लगाने से उनका व्यंजन रूप सहज ही बनाया जा सकता है। संस्कृत के लिये हमें हल चिन्ह रखना ही पड़ेगा। इस प्रकार जहाँ आज लगभग २०० टाइपों की ज़रूरत होती है, वहीं वे उक्त सुधारों के कारण घटकर ७५ से भी कम रह जाते हैं। साथ ही देवनागरी लिपि भी अत्यन्त शास्त्र शुद्ध बन जाती है। सारांश युक्त सुधारों के कारण सैद्धांतिक और व्यावहारिक दोनों ही प्रकार का लाभ सिद्ध हो जाता है। इसलिये समस्त हिंदी भाषा-भाषियों से हमारा आग्रहपूर्ण निवेदन है कि वे इस

लिपि-सुधार का प्रचार भरसक प्रयत्न द्वारा शीघ्रता से करें। और इसका सबसे पहला एवं सरल साधन है "प्रत्येक व्यक्ति का इसी लिपि में एकदम लिखाई आरम्भ कर देना"। केवल एक ही महीने में हमें इस रूप में लिखने का अभ्यास हो गया। यदि हिंदी भाषा-भाषियों ने इस व्रत को स्वीकार कर लिया और पाठशालाओं में प्रत्येक बच्चे को उक्त तीन चार सुधारों के रूप बतलाकर कम-से-कम आधुनिक स्वरूप के साथ वैकल्पिक रूप में ही क्यों न हो, सिखाये जायं तो अगले पाँच वर्षों में ही यह सुधार व्यावहारिक बन सकता है। आज भी 'क्त' और 'क्त' 'क्क', और 'क्व के रूप में अक्षरों के दो दो रूप हम सीखते ही हैं, उसी प्रकार ये भी सीखे जा सकते हैं।

सारांश—कम-से-कम 'अ' की बाराखरी का व्यवहार यदि सभी समाचार-पत्रों और प्रेस मुद्रकों की ओर से आरम्भ कर दिया जाय तो हमारी समझ में कोई हानि न होगी। क्योंकि यह अब सबकी समझ में आ सकती है। और इसके कारण एक दम आठ दस (८-१०) टाइप भी कम हो जाते हैं। यही बात संयुक्ताक्षरों को सरलता से मिलाकर लिखने के विषय में भी कही जा सकती है।

इन दोनों सुधारों के बहु-सम्मत होने का तो स्व० केलकर के हस्ताक्षर से प्रकाशित विवरण (प्रतिवृत्त) में उल्लेख है ही, किन्तु कोई भी सुधार केवल मत-प्रदर्शित करने से नहीं हो सकता जब तक कि इसे व्यवहार में न लाया जाए। इसलिए प्रत्येक विद्यार्थी एवं हिंदी भाषा-भाषी सज्जन को आज ही से इस बात की प्रतिज्ञा करनी चाहिए कि "मैं कम से कम 'अ' की बाराखरी और संयुक्ताक्षर सरलता से लिखूंगा और छपाऊंगा ही।" साथ ही इसे व्यवहार में भी लाना चाहिए। यह हमारा आग्रहयुक्त और हार्दिक निवेदन है। केवल मन में दृढ़ संकल्प कर लेने पर यह राष्ट्रीय सुधार अत्यंत सुलभ-सुसाध्य है। इस लिये कम-से कम इस राष्ट्रलिपि के सुधार का कार्य तो हम सबको मिलकर तत्काल कर दिखाना चाहिए। ['स्वराज्य', २२-११-३२]

नागरी लिपि सुधार और दिल्ली का हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन

विगत मार्च मास १९३४ में दिल्ली नगर में हिंदी-साहित्य-सम्मेलन का जो बृहत् समारोह हुआ था, उस में बड़ौदा-नरेश ने हिन्दुस्तान की राष्ट्रीय लिपि 'देवनागरी' बनाने की निःसंदिग्ध घोषणा की, यह देख मुझे आनंद हुआ। उससे भी अधिक आनन्द इससे हुआ कि प्रस्ताव १० के अनुसार यह सम्मत हुआ कि नागरी-लिपि में यथाशक्य और यथाशीघ्र ऐसा सुधार किया जाय कि जिससे वह कम से कम आज की अंग्रेज़ी लिपि जैसी मुद्रणक्षम और शिक्षणसुलभ बने। इस प्रस्ताव के अनुसार जो सुधार आवश्यक और व्यवहार्य हैं उनको निश्चित करने के लिए सात सदस्यों की एक समिति भी नियोजित की गई है—श्री० धीरेन्द्र वर्मा, डा० सुनीतिकुमार चटर्जी, डा० सरकार, श्री वि० दा० सावरकर, पं० गौरीशंकर ओझा, मि० ध्रुव और सत्यनारायण जी इस कमेटी में हैं।

लिपि सुधार का कार्य अब हिन्दी भाषीय जगत् में भी महाराष्ट्र जैसा अथवा उससे भी तेज़ी से, शीघ्र ही चलना चाहिये। मुझे इसकी इतनी उत्कट इच्छा है कि मैं स्वयं ही इस अवसर पर उस लिपि सुधार के सम्बन्ध में अपने विचार 'स्वराज्य' द्वारा जनता के सामने रख कर इस आंदोलन को गति देना अपना कर्तव्य समझता हूं।

इसके अतिरिक्त मैंने लिपि-शुद्धि के विषय पर आज तक कई हिंदी, पंजाबी वृत्त-पत्रों में जो लेख लिखे, उनको पढ़ कर अनेक

सज्जन मुझे कभी कभी पूछते हैं कि लिपि-सुधार का कार्य किस रूप से और किस प्रणाली से करना चाहिये, जिससे वह शीघ्रातिशीघ्र यशस्वी हो सके, ऐसे सज्जनों को व्यक्तिशः वही सूचना पुनः पुनः लिखते रहने की अपेक्षा मेरा वक्तव्य प्रकट रूप से किसी समाचार पत्र में ही छपाना श्रम और समय बचाने और प्रचार विस्तृततर होने की दृष्टि से अधिक वांछनीय समझकर यह लेख 'स्वराज्य' में प्रसिद्ध्यर्थ भेजना इष्टतर समझता हूं।

नागरी लिपि में जो सुधार होना आज अत्यंत आवश्यक है और जो अत्यन्त व्यवहार्य भी है, उनके बारे में सविस्तार चर्चा मैंने अनेक लेखों में हिंदी में भी आज तक की है। इसलिए इस लेख में मैं उनका पृथक कारणशः और तुलनात्मक विवरण करने की आवश्यकता नहीं समझता। महाराष्ट्र में छः सात वर्षों की लगातार चर्चा के पश्चात् जो बहुमत सिद्ध हुआ है, जिसको महाराष्ट्र-साहित्य-सम्मेलन की उपसमिति ने भी माना है, और जो आज तक महाराष्ट्र में सैंकड़ों लोगों द्वारा दैनिक व्यवहार के काम में भी लाया जाता है, उसे संक्षेपतः केवल नामनिर्दिष्ट करना ही पर्याप्त समझता हूं और उसका अब अखिल भारत में प्रचार किस प्रकार हो सकता है, तथा अखिल भारत में प्रत्यक्ष रूप में व्यवहृत करने के लिये किस संघटित प्रणाली और उपायों से हमें काम करना चाहिये—इस विषय को ही इस लेख में प्रमुखतः विवरण करना आवश्यक समझता हूं।

(१)

नागरी लिपि शुद्धि की योजना !

जो सुधार अत्यन्त आवश्यक और अत्यन्त व्यवहार्य भी हैं, वे केवल तीन ही हैं :—

(१) 'अ' की बाराखरी:—स्वरों के रूप 'अ' को बाराखरी के कानामात्रादि चिन्ह देकर सिद्ध किये जायं। यथाः—अ, आ, अि, अी, अु, अृ, अॄ, अे, अै, ओ, औ, अं, अः

(२) संयुक्ताक्षर एक ही नियम से तोड़ कर लिखे जायं। यथाः—ल्‌ल, क्‌क, क्‌व, क्‌त, त्‌र इत्यादि। इनके आज जो रूप प्रचलित हैं वे ल्ल, क्क, क्व, क्त, त्र प्रभृति नियमबाह्य स्वच्छंद और विक्षिप्त रूप त्याज्य समझने चाहियें। इस सुधार से कम-से-कम पचास-साठ स्वतंत्र-संयुक्ताक्षरों और टंकों (type) को निकाल दिया जा सकता है।

(३) क, फ, और र को काना युक्त करके इस प्रकार लिखा जायः— क, फ, र

विशेष :—ट, ठ, ड, ढ, छ, द, प्रभृति चोटीवाले अक्षरों को व्यजंन रूप न होने से संयुक्ताक्षरों में उन्हें हलन्त लिखा जाय। जैसेः— छद्‌म, पद्‌म, साढ्‌य, जाड्‌य, सट्‌टा इत्यादि)। नागरी लिपि में कम-से-कम इतने ३ सुधार किये जायंगे तो वह अंग्रेजी लिपि के समान ही नहीं किंतु उससे भी अधिक शिक्षण-सुलभ और मुद्रण सुलभ बन जायगी।

इससे अधिक सुधार यदि व्यवहार्य हो तो भले ही किये जायं; परंतु ऊपर दिये हुए तीन सुधार तो अत्यंत अपरिहार्य हैं और साथ साथ पर्याप्त भी हैं। इससे भी अधिक महत्व की बात यह है कि आज महाराष्ट्र में उनका व्यवहार भी सैंकड़ों लोग कर रहे हैं और उनका परिचय तो बहुधा सर्व सुशिक्षित समाज को हो चुका है। इसलिये जो हिंदी-भाषी सज्जन लिपि सुधार के लिये आज तक यत्न करते आये हैं, उनसे मेरी प्रार्थना है कि वे अब इन्हीं सुधारों को पहले हाथ में लें और इनको प्रचलित कर डालें। सुदैव से हिंदी-लिपि-सुधारकों में श्री० सिंहल प्रभृति सज्जनों के मत से भी यह योजना

उचित ठहरती है। किसी योजना के निश्चित करने में और नानाविध सुधारों की केवल तार्किक और शाब्दिक चर्चा करने में ही समय व्यतीत न करते हुए ऊपर दिये हुए तीन सुधारों को ही प्रथम एक मत से व्यवहार में लाना चाहिये। इसके बाद अन्य आवश्यक और शक्य सुधारों की चर्चा की जा सकेगी।

(२)

मेरे हिंदी-भाषी मित्र मुझसे बार बार पूछते हैं कि लिपि-सुधार व्यवहार में कैसे लाया जाय। हम इस लेख में सब के लिये रत्नागिरी में लिपि-शुद्धि-मंडल की कार्य-प्रणाली की रूपरेखा यहां देते हैं। महाराष्ट्र में आज लिपि सुधार का प्रत्यक्ष प्रचार करने में इस मंडल की अनेक शाखाओं का यत्न बहुत कुछ कारणीभूत हुआ है।

(१) प्रत्येक नगर के लिपि-शुद्धि के इच्छुकों को चाहिये कि केवल चर्चा करना छोड़ ऊपर दिये तीन सुधारों को तत्काल व्यवहार में लाने के निश्चय से एक लिपि शुद्धि-मंडल स्थापित करें। और उसके प्रत्येक सभासद का कर्तव्य होना चाहिये कि अपने सब वैयक्तिक पत्र-व्यवहार, लेख, गणन (हिसाब) प्रभृति इसी लिपि में लिखें। कम-से-कम 'अ' की बाराखरी और युक्ताक्षर तोड़ के लिखना तो पहले ही दिन से आरंभ कर देना चाहिये। इस नियम के अनुसार आज रत्नागिरी नगर में ८०० से अधिक व्यक्ति इस शुद्ध लिपि को लिख रहे हैं। इन लोगों के हज़ारों पत्र सैंकड़ों गांवों में जाते आते हैं। उतने स्थल के डाक सिपाही और पत्र पढ़ने वालों को यह लिपि पढ़नी पड़ती है। उसका प्रचार सहज ही हो जाता है। यही व्यवस्था, जिस जिस नगरों-ग्रामों में इस मंडल की शाखाएं हैं, उधर उधर भी चल रही है।

(२) प्रत्येक सभासद अपने बालकों को इस लिपि में शाला,

कालेज में लिखने का अनुरोध करें। शालाओं में शिक्षक आक्षेप करें तो पालक स्वयं चिट्ठी भेज उन्हें समझाएं कि सरकारी आज्ञा तीन चार अक्षर विकल्पतः नये रूप से लिखने के विरूद्ध नहीं है। रत्नागिरी नगर में ही नहीं, किन्तु जिले में भी अनेक शालाओं में यह लिपि विद्यार्थी लिखते हैं। शिक्षकों में भी इस लिपि के सिखाने का उत्साह बढ़ रहा है। फिर भी शाला कालेज का प्रश्न जहां आपत्ति उपस्थित करें, वहां शाला, कालेज छोड़, जीवन के अन्य कार्यों में इसी लिपि के लिखते रहने का अनुरोध तो बिना किसी अड़चन के किया जा सकता है। इस नियम से हर सदस्य का घर लिपि सुधार का एक छोटा सा प्रचारक संघ ही बन जायगा।

(३) सदस्य के हाथ में जो संस्था हो, उसमें भी इस लिपि का ही यथाशक्य व्यवहार करना चाहिये। रत्नागिरी की हिंदू सभा लिपि-शुद्धि की पूर्ण अभिमानी है। आज सात वर्षों से उसकी सब लिखावट 'प्रतिवृत्त' रिपोर्ट, पुस्तकें हस्तपत्रक, भित्ति पत्रक, पोस्टर्स हजारों की संख्या में इसी लिपि में लिखे और छापे जाते हैं। इससे महाराष्ट्र में इस सभा के विस्तृत साहित्य के वितरण के साथ-साथ लिपि शुद्धि का भी परिचय विस्तृत रूप से हो रहा है।

(४) वृत्त-पत्रों में प्रति सप्ताह न्यूनतः दो तीन स्तंभों में इस लिपि में लेख छापे जायं। रत्नागिरी के बलवंत और 'सत्यशोधक'—इस लिपि के स्तंभ देते हैं और 'अ' की बाराखरी अधिकांश भाग में छापी जाती है। मेरे लेख में तो इसी लिपि का उपयोग होता है। इस कारण से 'केसरी', 'किर्लोस्कर', 'श्रद्धानंद' आदि पत्रों में मेरे किसी भी विषय के लेखों में यही अंशतः या पूर्णतः छापी जाती और उन्हीं वृत्तपत्रों के पचास हज़ार पाठकों को इसका परिचय होता जाता है।

(५) जो सदस्य ग्रंथकार हैं, वे अपने ग्रंथों में कम से कम 'अ' की बाराखरी और संयुक्ताक्षर तोड़ कर लिखें और छपायें।

(६) नगरों में जो दूकानदार, डाक्टर, वकील प्रभृति सज्जनों की दुकानें और कार्यालय होते हैं—उनको अपने 'साइन बोर्ड' (नाम फलक) इस लिपि में लिखवाना चाहिए। महाराष्ट्र में आज भी अनेक घरों पर इस लिपि में लिखे हुए फलकों से पांथस्थ आकर्षित होता है।

दिग्दर्शन के लिए मैंने थोड़े से नियम ऊपर दिये हैं। उनका मुख्य मर्म है व्यवहार, प्रत्यक्ष आचार। लिपिसुधार केवल चर्चा से ही कभी नहीं होगा। फिर चाहे लाखों का एकमत क्यों न हो। जब एक सौ लोग ही इसे लिखने लगेंगे और निष्ठापूर्ण प्रतिज्ञा करेंगे कि 'मैं इस लिपि में लिखूंगा' तब ये एक सौ लोग सारे नगरों में इस सुधार का फैलाव कर सकते हैं।

ऐसे समय यदि हिन्दी-भाषी प्रांत भी इस सुधार को हाथ में लें और उसको तत्काल ही थोड़ा बहुत व्यवहार में लाने लगें, इस लिपि में लिखने लगें, तो दस-पांच वर्षों में यह सुधार पूर्ण हो जायगा।

हिन्दु राष्ट्र की उन्नत्ति का कुछ अंश ऐसा है कि जिसका सुधारना केवल हमारे हाथ में है। इसके करने में कोई पराई रुकावट नहीं। जो रुकावट है वह केवल स्वकीय निष्क्रियता की है। राष्ट्रलिपि के सुधार का यह प्रश्न भी उन सुधारों में ही है। हम करने लगेंगे तो इस प्रश्न को दो वर्ष के अन्दर यशस्वी करके छोड़ सकते हैं।

मैं तो यहाँ तक कहता हूँ कि यदि किसी नगर या स्थान में संघटित यत्न करने के लिए पाँच मनुष्य भी न मिलें, तो भी जिस मनुष्य को इस लिपि-शुद्धि से प्रेम हो वह अकेले अपने लिए इसका

व्यवहार करे। ऐसे एक व्यक्ति के संसर्ग में आने वाले पाँच-पचीस मनुष्यों में भी लिपि सुधार का फैलाव सरलता से हो सकेगा।

लिपि-सुधार समिति जो दिल्ली में साहित्य परिषद् ने नियुक्त की है, उसके माननीय सदस्यों को भी मेरी यही विनती है कि चर्चा में दिन व्यतीत न करके व्यवहार का आरंभ कर दीजिए। हजारों लोग स्वयं कभी सीखेंगे नहीं, परंतु आपके लिखे हुए को वे पढ़ेंगे अवश्य।

साहित्य सम्मेलन के कार्यालय से निवेदन है कि वह इस सुधरी हुई लिपि में अपनी लिखाई शुरू करे। अरबी लिपि (उर्दू के समान ही) छपाई और पढ़ाई में कितनी निकम्मी है। यह देखते ही तुर्कों ने कमाल पाशा के नेतृत्व में, अपनी धार्मिक लिपि होते हुए और दूसरी लिपि के न होते हुए भी, अरबी को जड़ से उखाड़कर फेंक दिया और रोमन लिपि को दो वर्षों में अपना डाला। हमारा काम तो अत्यंत सुलभ है। बहुत ही सुन्दर, शुद्ध, एवं पवित्र हमारी नागरी लिपि केवल दो चार परिवर्तन करके रोमन-लिपि को भी टक्कर दे सकती है। तो क्या दो चार सरल परिवर्तन करने का भी उत्साह हम नहीं दिखायेंगे? हमारी राष्ट्रलिपि को सुधारने के अत्यंत सुलभ कार्य में भी क्या हम सोते रहेंगे ?

['स्वराज्य', २४—४—१६३४]

राष्ट्र-लिपि और लिपि-शुद्धि आंदोलन

गत ३० वर्षों का इतिहास

अखिल भारतवर्ष के बाईस करोड़ हिंदुओं के प्रातिनिधिक मत से यह बात तो निश्चित हो चुकी है कि हमारे हिंदी राष्ट्र की राष्ट्र लिपि नागरी ही है।

राष्ट्रीय लिपि का सम्मान प्राप्त करने वाली हमारी यह लिपि संसार की वर्तमान सभी लिपियों से अधिक शास्त्र शुद्ध है। उसके कुछ अक्षरों के रूप और संयोग में किंचित परिवर्तन कर देने से शिक्षा सुलभता एवं मुद्रण सुलभता में भी हमारी लिपि अंग्रेजी लिपि का भी मुक़ाबला कर सकती है; फिर अरबी, ऊर्दू, चीनी, प्रभृति अप्रयोजक एवं अशुद्ध लिपियों की तो बात ही क्या है?

इस लिपि को अखिल भारतवर्ष की राष्ट्र लिपि बनाने के निश्चय को व्यावहारिक सत्य सृष्टि में परिणत करने के कार्य में हिंदी साहित्य सम्मेलन जुटा हुआ है। हिंदु राष्ट्र की लिपि-एकता के हो जाने से हिंदू संगठन का एक उपकारक एवं कठिन कार्य सम्पन्न हो जायगा। इसीलिए मद्रास से काश्मीर और बंगाल से सिंध तक की सभी हिंदु जनता में नागरी प्रचार का जो कार्य हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने उठाया है, उसमें यथाशक्ति सहायता पहुँचाना हिंदूमात्र का कर्तव्य है, दायित्व है।

एक लिपि प्रचार के लिये आवश्यक कार्य लिपिसुधार है। इसे पूरा करने के लिये हिंदी-साहित्य सम्मेलन ने एक उप-समिति बनाई

है। इस वर्ष के लिये उसके सभापति श्री काकासाहब कालेलकर हैं। आपने एक लिपि प्रचार के कार्य के साथ साथ लिपि-सुधार का प्रश्न भी हाथ में लिया है। आपकी उप-समिति की एक बैठक वर्धा में हुई थी। उक्त समिति ने जनता के सम्मुख एक योजना तैय्यार रखी है। यदि इसी उत्साह से काम किया जायगा तो 'अ' की बाराखरी जैसे प्रायः सर्वमान्य सुधार अखिल भारतवर्ष में शीघ्र ही व्यवहार में आने लगेंगे। महाराष्ट्र में तो यह सुधार प्रायः स्वीकार किया जा चुका है। यदि सभी नागरी पत्र इन सुधारों को एक साथ व्यवहार में लाने लगें तो लिपि सुधार का प्रश्न अखिल भारतवर्ष में भी सुलझने के मार्ग पर होगा और बहुतांश में सुलझ जायगा।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन के गताधिवेशन के लिपि विभाग की प्रार्थना पर हमने एक निबंध लिख भेजा था। उसमें दिखाया था कि महाराष्ट्र में यह प्रश्न किस तरह उपस्थित हुआ, किस तरह सैंकड़ों सद्गृहस्थ सुधरी हुई नागरी लिपि को दैनिक व्यवहार में लाते हैं और सुधार-योजना का स्वरूप क्या है? उक्त सम्मेलन में निबंध पाठ नहीं हो सका, परंतु लिपि सम्मेलन के सभापति श्री कालेलकरजी ने वर्धा से एक पत्र द्वारा हमें सूचना दी कि हमारी लिपि-सुधार-योजना के बहुतांश से वे सहमत हैं। आपने हमारे सुधार कार्य क्रम के परिणाम-कारी होने की बात भी स्वीकार की थी। आपने और भी लिखा था, "आप हमारी उपसमिति की चर्चा एवं सूचनाओं पर अपनी राय लिखते रहिये, और अपने इस विषय के लेखों की जानकारी भी भेजिये।"

काका कालेकर जी के व्यक्तिगत पत्र के उत्तर में जो कुछ लिखना था, हम लिख चुके हैं। परंतु इस विषय की चर्चा प्रकट लेख में प्रकाशित करने से उतने ही श्रमों में अनेकों से विचार-विनिमय हो सकता है, यही सोचकर वर्धा की लिपि सुधार समिति की बैठक में

जो सूचनायें जनता के सम्मुख उपस्थित की गई हैं, उनकी चर्चा इस लेख में की जा रही है।

वर्तमान नागरी लिपि को मुद्रण-सुलभ एवं शिक्षण-सुलभ बनाने के लिये उसकी अक्षर-व्यवस्था तथा अक्षर रूप में परिवर्तन करने की आवश्यकता भारतवर्ष के अनेक विचारवान व्यक्तियों को गत तीस-पैंतीस वर्षों से अनुभव होती रही है। नागरी लिपि के रूप में परिवर्तन न करते हुये, छापने के कार्य में सरलता लाने के लिये निरंश (डिग्रीलेश) टाइप ढालने आदि सुधार निर्णय-सागर प्रभृति संस्थाओं तथा टाइप सुधारकों ने किये। आज के लेख में इस विषय की चर्चा प्रस्तुत नहीं है। टाइपों में चाहे जितना सुधार क्यों न किया जाय, जब तक नागरी अक्षरों के कुछ रूप और मोड़ में परिवर्तन नहीं किया जाता तब तक यह अंग्रेज़ी जैसी मुद्रणक्षम नहीं हो सकती। परन्तु उस में यदि दस-पांच अक्षरों के रूप बदल देने का सीधा-सादा सुधार कर दिया जाय तो वह मुद्रण सुलभता में संसार की प्रचलित लिपियों से टक्कर ले सकती है। शिक्षण-सुलभता में तो वह सब से बढ़ी चढ़ी रहेगी। यही सोचकर कई विद्वानों ने नागरी-लिपि के अक्षरों के सुधार की अनेक योजनाओं की विवेचना की। अन्य प्रांतीय लोगों से पहले महाराष्ट्र प्रांत का ध्यान इस विषय की ओर विशेष रूप से आकर्षित हुआ था।

डा० भांडारकर के समय से स्वयं भांडारकरजी एवं अन्य गृहस्थों ने लिपि-सुधार-योजना की चर्चा समाचार-पत्रों और पुस्तिकाओं द्वारा आरम्भ की। इन सब का उल्लेख यहां नहीं किया जा सकता, तथापि उदाहरण स्वरूप कोल्हापुर के श्री० देवधर, श्री० गोखले, ज्ञानमित्र—सम्पादक, बम्बई के श्री० शीतूत, थाने के श्री० नानल आदि सज्जनों

ने इस कार्य में जनता द्वारा वर्षों तक उपेक्षित होने पर भी यथाशक्य प्रयत्न किये। इन पुरोगामी (Pioneer) लिपि-सुधारकों में बम्बई के हिंदू-मिशन के सम्पादक स्वर्गीय श्री० गजाननराव वैद्य का कार्य विशेष रूप से उल्लेखनीय है। 'अ' की बाराखरी आप ने अपने समाचार-पत्र में सर्वप्रथम उपयोजित की। केवल चर्चा में फंसे रहने के स्थान पर उन्होंने तीस वर्ष पहले लिपि-सुधार का व्यवहार आरम्भ कर दिया था। उनके भाई श्री० सुन्दरराव वैद्य भी लिपि-सुधार के पुरोगामी पथक के कट्टर सैनिक हैं। उस समय महाराष्ट्रेतर प्रांतों में लिपि-सुधार का कोई आन्दोलन नहीं था। व्यक्तिगत विचार जरूर थे, परन्तु सामूहिक जागृति नहीं हुई थी। लोकमान्य तिलक ने इस विषय को प्रोत्साहन दिया, पर फिर भी विषय केवल विचार चर्चा से आगे नहीं बढ़ सका।

इसलिये सन् १९२७ से हमने इस कार्य को प्रत्यक्ष व्यवहार करके आगे धकेलने का निश्चय किया। पिछले तीस वर्षों की तीस-चालीस योजनाओं का समीक्षण किया और उनके बहुमत, व्यवहार योग्य एवं अत्यंत आवश्यक भाग एकत्र कर वर्तमान योजना निर्माण की। साथ-साथ इस शुद्ध लिपि को प्रत्यक्ष लेखन-कार्य में भी हम काम में लाने लगे। प्रचार के आगे की सीढ़ी—आचार पर हमने पैर रखना शुरू किया। सन् १९२७ में 'श्रद्धानन्द' पत्र में इस संकल्प की घोषणा के साथ लिपि-सुधार के प्रश्न का संगठित आंदोलन हमने आरम्भ किया। तीन-चार वर्ष तक हमारा 'मराठी श्रद्धानन्द पत्र' और 'हिंदी श्रद्धानन्द पत्र' अपने दस-बारह हजार पाठकों के पास पूर्णतया सुधरी हुई लिपि में छपा कुछ भाग पहुंचाता रहा। इससे महाराष्ट्र में 'अ' की बाराखरी लोगों की आदत में आ गई। इसी समय रत्नागिरी की हिन्दू सभा ने इस प्रश्न को हाथ में लिया और

लिपि शुद्धि को व्यवहार में लाना आरम्भ किया। हिंदू सभा की सभी लिखाई छपाई, हजारह हस्तपत्रक पत्र व्यवहार गत ५-६ वर्षों से शुद्ध लिपि में ही किया जाता है। उक्त सभा ने लिपि शुद्धि समिति नामक एक स्वतंत्र संस्था भी स्थापित की। उसने शुद्ध लिपि का व्यवहार करने वाले कोई एक हजार प्रतिज्ञाबद्ध सदस्य एकत्र किये हैं। इस लिपि शुद्धि समिति के प्रयत्न से रत्नागिरी एक लिपि शुद्धि नगर बन बैठा है। पाठशालाओं के अनेक लड़के और लड़कियां शुद्ध लिपि में लिखते हैं। अनेक वकील, डॉक्टर, दूकानदार आदि के साइन बोर्ड (नाम के तख्ते), नाटक मण्डलियों के हस्त पत्रक, लिपि शुद्धि आन्दोलन के समर्थक "बलवन्त" और "सत्यशोधक" समाचार पत्र हिन्दू सभा आदि संस्थाओं के वार्षिक विवरण लिपि शुद्धि के लिये प्रतिज्ञाबद्ध सैंकड़ों स्त्री पुरुषों का आपसी पत्रव्यवहार आदि सभी रत्नागिरी में सुधरी हुई लिपि में हो रहा है। रत्नागिरी जिले के ग्रामों में भी यह आन्दोलन फैल रहा है। इधर पिछले पाँच छः वर्षों में टाइपों के सुधार की दिशा में भी महाराष्ट्र में बहुत प्रगति हुई है। श्री अत्रे महोदय का टाइप-राइटर, (टंक लेखक), निर्णय सागर, केसरी आदि मुद्रणालयों की तरह श्री बिजापुरे आदि के नये सुधरे हुए टाइप, श्री दाते महोदय द्वारा बनाया गया एक टंकक (मोनोटाइप) आदि कार्यों द्वारा महाराष्ट्र ने नागरी-मुद्रण सुधार में बहुत कुछ सहायता पहुँचाई है। आज तक के लिपि सुधारकों की चर्चा एवं योजना का बहुत सा उपयोग इन टंक सुधारकों ने (टाइप सुधारकों ने) किया और योजनाओं को सफल बनाया।

लिपि शुद्धि की योजना में संयुक्ताक्षर तोड़कर अलग लिखने और मात्रादि स्वर-चिन्ह, किंचित आगे बढ़ाने का सुधार, इस यंत्र द्वारा

टाइप के रूप में काम में आया और वह समाज में पच भी गया। इन नये यंत्रों को जो सुधार अपरिहार्य रूप से अक्षरों के रूपों में करना ही पड़ा, उसके परिचय की आद्य भूमिका लिपि-सुधार आंदोलन ने तैयार कर रखी थी। इसीलिये टाइपों के रूप का सुधार समाज की मनोभूमि में सरलता से प्रविष्ट हो गया।

आज महाराष्ट्र, में लिपि-शुद्धि के आंदोलन के कारण, 'अ' की बाराखरी, संयुक्ताक्षर तोड़ कर लिखने, तथा 'क', 'फ' 'र' काना-युक्त करने के सुधार, निकट परिचय के हो गये हैं। इतना ही नहीं, विकल्प रूप से वे व्यवहार में भी आने लगे हैं। 'महाराष्ट्र शारदा', 'प्रजापक्ष', 'प्रवासी', 'केसरी', 'महाराष्ट्र' 'किर्लोस्कर', 'स्त्री' आदि जिन का लक्षावधि पाठकों में प्रचार है, ऐसे बहुत समाचार-पत्र, अंशतः या पूर्णतः शुद्ध लिपि का व्यवहार करने लगे हैं। सैंकड़ों विद्यार्थी एवं गृहस्थ उसी में लिखते हैं। हमारे सभी ग्रंथों में इसी लिपि का उपयोग हुआ है। प्रो० पटवरधन आदि अन्य कुछ ग्रंथकार भी अंशतः शुद्ध लिपि का समर्थन करते हैं। महाराष्ट्र साहित्य-सम्मेलन में भी लिपि शुद्ध की चर्चा और प्रस्ताव हुए। आज इस बात के कहने में कोई हानि नहीं है कि सन् १९२७ में, 'श्रद्धानन्द' द्वारा जिस सुधार का हमने आरंभ किया था, वह उस समय केवल मुट्ठी भर कल्पकों की एक कल्पना मात्र थी, परंतु आज महाराष्ट्र में लिपि-शुद्धि आंदोलन केवल योजना नहीं रह गई है, किंतु एक वास्तविकता बन गया है। कल्पना-जगत् से वह व्यवहार जगत् में आ चुका है। यदि हमारे सभी समाचार पत्र एवं लेखक इसी तरह जोर लगाकर कुछ स्तम्भों में शुद्ध लिपि का प्रयोग करने लग जायें, कम से कम आदत में दाखल हो चुकने वाली 'अ' की बाराखरी एवं संयुक्ताक्षर तोड़कर लिखने का सर्वमान्य सुधार पूरी तरह से काम में लाने लगें तो राष्ट्रीय

लिपि शिक्षण-सुलभ और मुद्रणलम बना देने का प्रथम श्रेय महाराष्ट्र को मिल सकता है। लिपि-शुद्धि आंदोलन का जन्म महाराष्ट्र में हुआ, उसकी साल-सम्हाल भो हुई महाराष्ट्र में, अब उसकी पूर्णता का काम भी महाराष्ट्र को करना चाहिए।

जिस प्रकार मराठी 'श्रद्धानन्द' ने लिपि सुधार का कार्यारंभ कर महाराष्ट्रीय जनता को नए सुधरे हुए अक्षरों की आदत डाल दी उसी प्रकार उत्तर भारत की हिन्दी-भाषी जनता में लिपि सुधार को जागृति एवं नये रूपों की आदत डालने का काम प्रथमतः हिन्दी 'श्रद्धानन्द' ने किया। उसके पूर्व कोई भी समाचार पत्र 'अ' की बाराखरी में नहीं छापा जाता था। इतना ही नहीं, रत्नागिरी की लिपि-शुद्धि मंडल जैसी संस्थायें स्थापित कर लिपि सुधार का कार्य भी किसी ने नहीं किया था। इसी समय कलक्ते के 'श्रीकृष्ण संदेश' के संपादक श्री गर्ग ने हमारे लिपि सुधार के निबंध अपने पत्र में प्रकाशित किये। पीछे 'स्वराज्य', 'भारतमित्र', 'सरस्वती' आदि हिंदी पत्रों में हमारे लेख तथा उनके विषय की संपादकीय टिप्पणियाँ आने लगीं। धीरे धीरे हिंदी में कुछ सज्जन इस प्रश्न को जोरों से आगे बढ़ाने के लिए अग्रसर हुए। विशेषतः खंडवा के हिंदी 'स्वराज्य' पत्र के संपादक श्री आगरकर ने अपने पत्र में लिपि-शुद्धि के हमारे और अन्यों के अनेक लेख प्रकाशित किये। इतना ही नहीं, हमारी प्रार्थना स्वीकार कर लिपि-सुधार प्रत्यक्ष आचरण में अंश-प्रत्यंशतः ला कर दिखाया। कई दिनों से उक्त पत्र में दो चार स्तंभ शुद्ध-लिपि में छपे रहते हैं। लिपि-सुधार को प्रत्यक्ष व्यवहार में लाने के लिये श्री गौरीशंकर, श्री पन्नालाल गुप्त आदि सज्जनों ने सन् १९३३ में नसीराबाद में नागरी-प्रचार का मंडल स्थापित किया। यह संस्था भी शुद्ध-लिपि प्रचार का कार्य करती है। इसी समय पंजाब के पत्रों में भी हमने लिपि-शुद्धि

के लेख लिखे। स्व० लाला लाजपतराय जी के 'पीपल' पत्र में हमने अंग्रेजी में नागरी लिपि शुद्धि की चर्चा की।

हिंदी भाइयों में इतनी जागृति के होते ही हिंदी साहित्य सम्मेलन में इस विषय का प्रस्ताव लाने का प्रयत्न दो-तीन वर्षों से हिंदी लिपि सुधारक कर रहे हैं, परंतु वह विषय पिछड़ता ही गया। इस वर्ष एक लिपि-सुधार-परिषद् उक्त सम्मेलन की ओर से की गयी थी। उसमें लिपि-सुधार के प्रश्न में ज़ोर पैदा हुआ और सम्मेलन की अधीनता में लिपि-सुधार-समिति की स्थापना भी हो गयी।

उक्त समिति की जो बैठक वर्धा में हुई थी, उसमें अखिल भारतीय लिपि सुधार योजना तैयार की गयी और वह जनता के सामने चर्चा के लिये उपस्थित भी की गयी है। हमने महाराष्ट्र में जिन सुधारों का प्रचार किया है, उनमें से बहुत से वर्धा की योजना में स्वीकार किये गये हैं। आगे उस योजना के प्रस्तावों का हम क्रमशः समीक्षण करते हैं, और आवश्यक सुधार भी सूचित करते हैं:—

(१) हिन्दुस्तान की काश्मीरी, पंजाबी, गुरखाली, बंगाली, हिंदी, सिंधी, गुजराती, मराठी, उड़िया आदि भाषाओं को संस्कृतोत्पन्न कहा जा सकता है। परन्तु तामिल, तेलगू, कानड़ी, मल्यायम आदि भाषायें संस्कृतोत्पन्न हैं अथवा नहीं, यह प्रश्न विवादस्पद है। फिर भी हम इन्हें 'संस्कृतनिष्ठ' भाषायें कह सकते हैं।

अतः नागरी को भारत की सारी संस्कृतनिष्ठ भाषाओं की एक लिपि बनानी चाहिये, फिर मुसलमान आदि अन्य-भाषानिष्ठ व्यक्ति उसे स्वीकार करें अथवा न करें।

(२) शिर पर रेखा के होने-न-होने से कोई विशेष हानि लाभ नहीं है।

(३) 'अ' की बाराखरी का होना उचित और अपरिहार्य है।

(४) मात्रा आदि स्वर-चिन्ह ऊपर नीचे न लगाए जायें। यह ठीक ही है। परन्तु उनको अक्षरों के 'आगे' लगाने का क्या मतलब है ? इसका स्पष्टीकरण होना चाहिये। पंक्तियों में, अक्षरों के बीच में स्वर-चिन्ह लगाये जायेंगे तो पंक्तियां लंबी हो जायंगी, ऐसी सूचना त्याज्य होनी चाहिये। अक्षरों के बिल्कुल ऊपर किंवा नीचे स्वर-चिन्ह न लगाए जाएं। परन्तु इन चिन्हों का आकार बिलकुल छोटा होना चाहिये। तुर्की टोपी जैसी लंबी 'ई' की वेलांटी एवं सांभर के सींग जैसी 'ए' की मात्रा नहीं होनी चाहिए।

(५) हिन्दी के अष्टावक्र 'अ' को छोड़ कर मराठी 'अ' ठीक ही रखा गया है। हिन्दी के "ण" की जगह मराठी 'ण' को स्वीकार किया जाना चाहिए। यही बात 'झ' के लिए है। यह सुधार उचित है।

(६) संयुक्ताक्षरों को अलग करना चाहिए जैसे, क्त, क्त्र, प्ल, इसके पुराने स्वरूप क्त, क्र, ङ्क आदि छोड़ देने चाहिए। यह प्रस्ताव भी बिलकुल ठीक है। इसी तरह 'रेफ' भी उच्चार क्रमानुसार 'र' के रूप में व्यंजन के बीच में लेना चाहिए। जैसे, (मर्म, गर्व) मर्‍म, गर्‍व। यह प्रस्ताव भी उचित है।

(७) 'ख' को 'रव', 'ल' को 'ल' लिखने का प्रस्ताव भी योग्य है।

(८) परन्तु 'ऋ' का बहिष्कार सर्वथा अनुचित है। यह प्रस्ताव भूल भरा है। क्योंकि संस्कृत भाषा भी शुद्ध लिपि में 'शुद्ध' रूप से छपनी चाहिए। अतः 'अ' की बाराखरी के अन्य चिन्हों के समान 'भृ' 'पृ' 'मृ' के समान चिन्ह बनाकर 'अृ' को इस प्रकार रख लेना चाहिए। जैसे 'अृषि' 'अृतु'। 'अृ' को बाराखरी में दिया जाय यह हमारी सूचना है।

(९) 'श्री' कायम रखने का प्रस्ताव 'त्याज्य' प्रतीत होता है। 'श्र' यह रूप महाराष्ट्र में परिचित हो चुका है।

(१०) परंतु 'ॐ' अक्षर को ज्यों का त्यों रखने का प्रस्ताव उचित है। उसमें तात्विक और बुद्धिग्राह्य अर्थ होने से और धार्मिक दृष्टि से उसकी विशेषता है।

(११) वर्धा समिति के ४, ७, ८, ९, १० और ११ क्रमांक के प्रस्तावों की चर्चा अनावश्यक है।

(१२) चोटी वाले अक्षर अर्थात् जिनमें 'काने' का (ा) चिन्ह नहीं है (जैसे ट, ठ, ड, ढ, द, छ, ह, ल) उनका व्यंजन रूप, संयुक्ताक्षर के लिए, नीचे 'हलन्त' का चिह्न देकर बनाना चाहिए। समिति की सूचना है कि "ꣲ" ऐसे संयोजक चिन्ह द्वारा उनके संयुक्ताक्षर बनायें जाय, जैसे द꣱य =द्य, द꣱ध = 'द्ध' पर इसकी आवश्यकता नहीं है। हलन्त का चिन्ह ही रखना पर्याप्त है। जैसे द्‌य, द्‌ध, ह्‌य आदि, बिना काने अक्षरों के संयुक्ताक्षर बनाने के लिए 'हलन्त' का (पायमोड़ चिन्ह) उपयोग सरल, रूढ, योग्य और शुद्ध है। इस विषय में हमारी योजना ही ग्राह्य होनी चाहिए।

(१३) समित्ति के प्रस्ताव में एक कमी रह गई है। उसने 'र' का रूप बदलने के विषय में कोई उल्लेख अपनी योजना में नहीं किया है। यही हाल 'क' 'फ' को 'काना युक्त' बनाने के संबन्ध में भी है। समिति से हमारी प्रार्थना है कि 'र' के जो भिन्न भिन्न रूप आज लिखने पड़ते हैं—यथा, र; र्ह, प्र, द्र, र्व, रू) वे अशास्त्रीय हैं। इनके कारण छपाई में २९-३० टाईप अधिक रखने पड़ते हैं। पुराने हस्तलिखितों में 'र' का ' = ' यही रूप दिखाई देता है। क, फ, र, के लिए भी यही बात लागू है, अतएव समिति को चाहिए कि क, फ, र, इन तीन अक्षरों

को क्‍ा, फ्‍ा, ऱा इस तरह कानायुक्त बनाने का प्रस्ताव पास करें। महाराष्ट्र में ये रूप परिचित हो चुके हैं।

सारांश

लिपि-शुद्धि की सबसे सरल योजना में (१) 'अ' की बाराक्षरी', (२) संयुक्ताक्षर तोड़कर सलग सरल लिखने, (३) 'क, फ, र' को कानायुक्त बनाने, (४) चोटी वाले अक्षरों को हलन्त चिन्ह देकर 'संयुक्त' करने तथा (५) रेफ को 'ऱ' के रूप में पंक्ति में लेने—इतना ही समावेश होना चाहिए।

यदि हिंदी-भाषी जगत् में लिपि-शुद्धि के अभिमानी इन सुधारों को ज़ोर के साथ अमल में लाते रहेंगे, उसका व्यवहार त्वरित करने लगेंगे, तो निश्चय ही यह सुधार अल्पावधि में यशस्वी होकर रहेगा, और हमारी राष्ट्रलिपि नागरी, रोमन लिपि से भी अधिक मुद्रणक्षम बनेगी, और उर्दू जैसी बेकार लिपि की बात तो छोड़ ही दीजिए।

['स्वराज्य', १४-१०-१९३९]

यह हिंदी साहित्य-सम्मेलन है—

अथवा 'हिंदुस्तानी' साहित्य-सम्मेलन ?

(सन् १९३५)

हिन्दी साहित्य-सम्मेलन का उर्दू निष्ठ प्रस्ताव !

हिंदी साहित्य-सम्मेलन में महात्मा गांधी की अध्यक्षता में किये गये और मुसलमान-परस्ती के कारण हिंदी के सिर पर आने वाले प्रस्ताव का तात्पर्य यह है कि जिस भाषा में संस्कृत या अरबी-फ़ारसी शब्दों की भरमार नहीं है, जो ग्रामीण लोग बोलते हैं, जो उर्दू या नागरी दोनों लिपियों में लिख ली जाती है और जिसमें अरबी, फारसी, तुर्की, अंग्रेजी आदि भाषा के शब्दों और मुहावरों को रुकावट नहीं है, ऐसी हिंदी ही हिंदुस्तान की राष्ट्रभाषा समझी जाए।

अब इस प्रस्ताव में कितने वाक्य अनुचित और अनर्थक हैं यह देखिये :—

(१) प्रथमतः 'जो भाषा उर्दू और नागरी में लिख ली जाती है'; इसका अर्थ क्या है ? यदि लिखने लगें तो मराठी भी उर्दू-लिपि में लिखी जा सकती है। उर्दू-भाषा भी नागरी में तो क्या, ईसाई आदि लोग जो भारत की राष्ट्र-लिपि रोमन करना चाहते हैं, वे हिंदुस्तान की उर्दू-भाषा को रोमन-लिपि में लिखते और छापते हैं। तब राष्ट्र-भाषा का जो लक्षण किया गया है वह प्रत्यक्ष ही अर्थशून्य है। पर यह कहा क्यों गया ? उसमें पोल यह है कि आज उर्दू-लिपि में

(अर्थात् फारसी, अरबी मिश्रित दाईं ओर से बाईं ओर लिखी जाने वाली अलिफ़, बे, ते आदि अवैज्ञानिक और मुद्रणानुरूपयुक्त मुस्लिम लिपि में) आज उत्तरी हिंदुस्तान में जो भाषा लिख ली जाती है, वह हिंदुस्तानी, अर्थात् अरबी, फारसी शब्दों से लदी हुई लखनऊशाही मुस्लिम भाषा ही है, संस्कृतनिष्ठ शुद्ध हिंदी नहीं। अतः उर्दू में लिखी हुई हिंदी राष्ट्रभाषा है, यह कहना संस्कृतनिष्ठ हिंदी राष्ट्रभाषा न होकर हिंदुस्तानी (अर्थात् उर्दू) ही राष्ट्रभाषा है, ऐसा कहने के समान है। इस प्रकार मुसलमानों को, उनका कहना मान लिया, ऐसा दिखाकर उनसे समझौता करने के समान है। हिंदी ही राष्ट्रभाषा और नागरी ही राष्ट्रलिपि, ऐसे निश्चित रूप से कहने पर मुसलमानों को कहीं धक्का न लगे, अतः हांजी-हांजी की मुंह-सुहेली इस व्याख्या का यदि कुछ अर्थ होगा तो यही कि आज जो उर्दू-लिपि में लिख ली जाती है वह अरबी, फ़ारसी शब्द बहुला हिंदुस्तानी (अर्थात् उर्दू-भाषा) राष्ट्र-भाषा है; यदि कोई चाहे तो उसे नागरी में लिख सकता है।

(२) इससे भी बढ़ कर उस प्रस्ताव में दूसरे वाक्य डाले गये हैं। उन वाक्यों से हिंदी की ही क्या, किसी भी भाषा को तोड़-फोड़ कर उसकी एक ग्राम-भाषा बना डाली जायगी। "जो ग्रामीण लोग बोलते हैं, जिसमें अरबी, फारसी, तुर्की, अंग्रेजी और पुर्तगीज़ आदि भाषाओं के जो शब्द और मुहावरे सामान्यजनों की बोली में आ जाते हैं, वैसे आने देने चाहियें"। वह हमारी राष्ट्र-भाषा कैसी हो सकेगी? हमारे भरतखंड के सदृश महान् संस्कृति, दर्शन, इतिहास और दिग्विजय के उत्तराधिकारी और जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में नवीन दिग्विजय करने की आकांक्षा रखने वाले इस महनीय राष्ट्र की एक बाज़ारी बोली राष्ट्र-भाषा कैसे हो सकती है?

बाज़ारी बोली राष्ट्र-भाषा नहीं

इस व्याख्या को सुनते ही हमें स्वेज़ से निकलने वाली युरोप की प्रवासिनी अग्नि-नौका की स्मृति हो गई। बोट स्वेज़ से लगी कि तीनों खंडों के बाज़ारी लोग विक्रेता और ग्राहक वहां ठहरते हैं। तुर्की, अरबी, स्वाहिली, मिश्री, अंग्रेजी, फ्रेंच और ऐसे अनेक भाषाओं के शब्द मिश्रण करके और नाना वस्तुओं को दिखाते और देखते हुए नाना देशीय प्रवासी उधर क्रय-विक्रय कर सकते हैं। इस दुनियां की बाज़ारी बोली में उस समय जगत् के प्रवासियों की बाज़ारू आवश्यकता पूर्ण भी हो जाती है। तथापि इसलिये यह बाज़ारी बोली क्या 'विश्व भाषा' बन सकती है? स्वेज़ की यह बाज़ारू बोली जैसे दुनिया की 'विश्वभाषा' नहीं बन सकती वैसे ही लखनऊ की बाज़ारी बोली हमारी राष्ट्रभाषा नहीं बन सकती। स्वेज़ की बाज़ारू बोली जैसे 'विश्वभाषा' का विडम्बनमात्र है वैसे ही यह, याने हिंदुस्तानी, हमारी राष्ट्रभाषा का विडम्बन है।

आश्चर्य यह है कि हिन्दी साहित्य-सम्मेलन ने यह प्रस्ताव सम्मत कैसे किया? हिन्दी के पालन, पोषण, प्रगति के लिए जो संस्था निर्माण हुई उसने महात्मा गांधीजी के आग्रह से मुस्लिम-परस्त गुट के सामने घुटने टेक कर हिंदी की जड़ पर ही ऐसा कुठाराघात करके केवल हिंदी-भाषा-भाषियों का नहीं, परन्तु कोट्यवधि महाराष्ट्री-राजपूती प्रभृति संस्कृतनिष्ठ भाषा-भाषी लोगों से भी विश्वासघात किया है। यदि इस प्रस्ताव को ठुकरा कर हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन त्वरित नहीं घोषित करेगा कि "संस्कृतनिष्ठ हिंदी ही हमारी राष्ट्रभाषा है और नागरी लिपि ही हमारी राष्ट्रलिपि है"—तो हिंदी-साहित्य-सम्मेलन का नाम भी मिट जाना चाहिये। उसको 'हिंदुस्तानी साहित्य-सम्मेलन' ही कहना चाहिये।

॥ इति ॥